वर्ष : 44
अंक : 2

अप्रैल - जून 2023

मूल्य 200 रुपए
ISSN 2582-4481

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

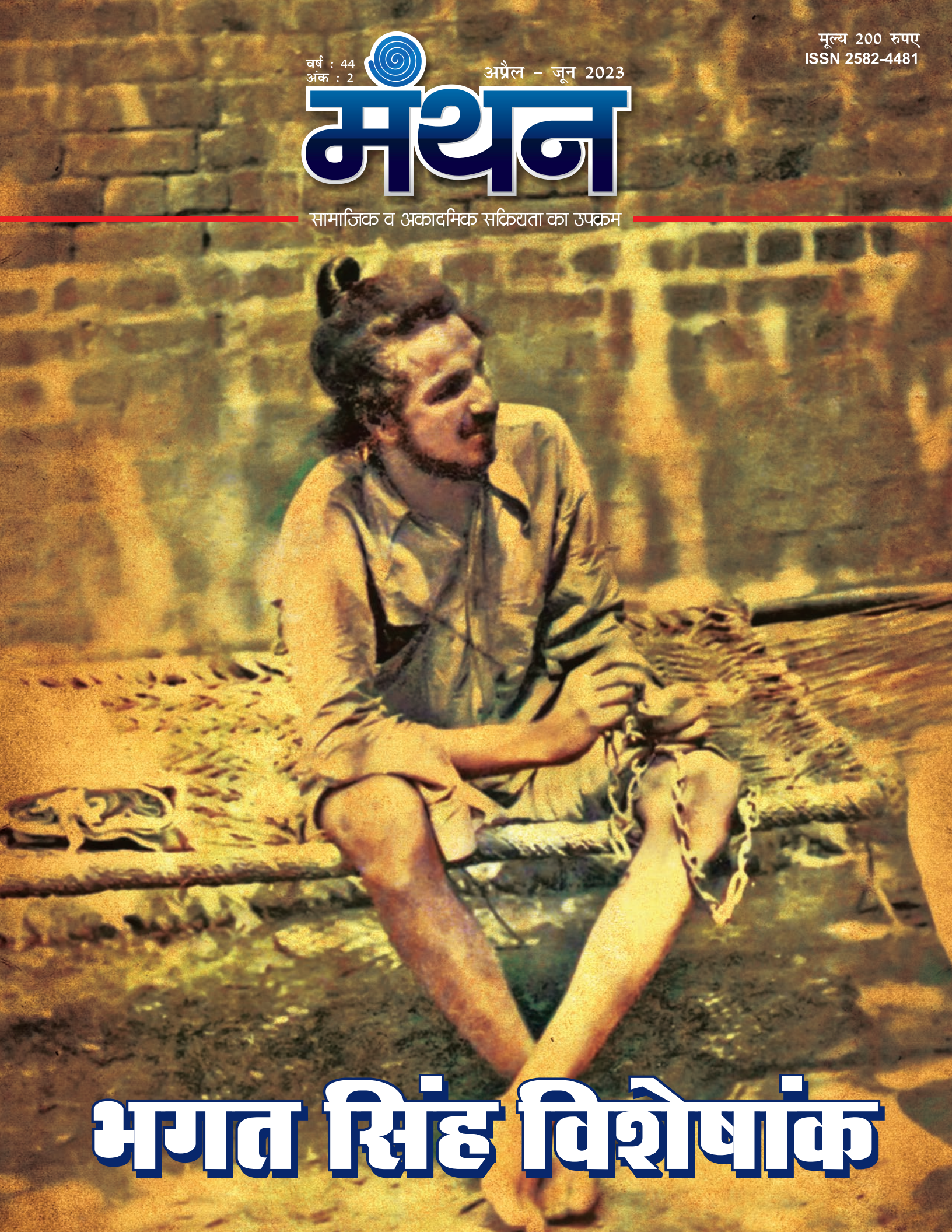

भगत सिंह विशेषांक

प्रभात प्रकाशन

नवनूतन प्रकाशन की गौरवशाली परंपरा

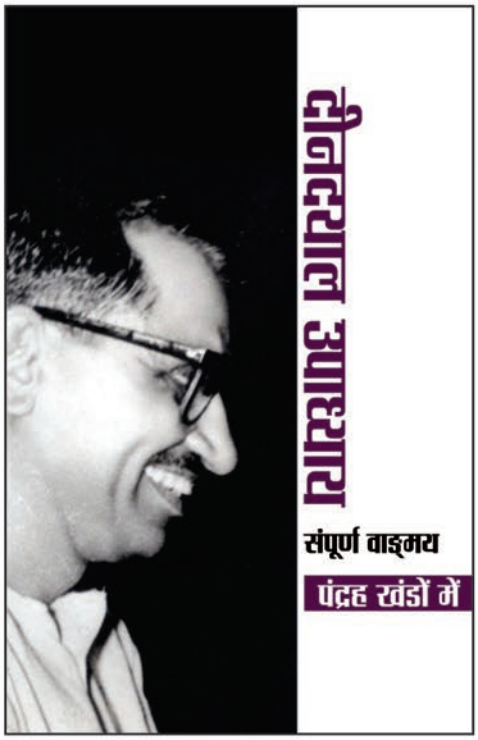

दीनदयाल उपाध्याय

संपूर्ण वाङ्मय (पंद्रह खंडों का सैट)

9 अक्तूबर, 2016 को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में पं. दीनदयाल उपाध्याय जन्म शताब्दी वर्ष के अवसर पर डॉ. महेश चंद्र शर्मा द्वारा संपादित एवं प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' के पंद्रह खंडों का लोकार्पण भारत के प्रधानमंत्री मान. श्री नरेंद्र मोदी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह मान. श्री सुरेश (भय्याजी) जोशी व भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष मान. श्री अमित शाह के करकमलों द्वारा संपन्न हुआ।

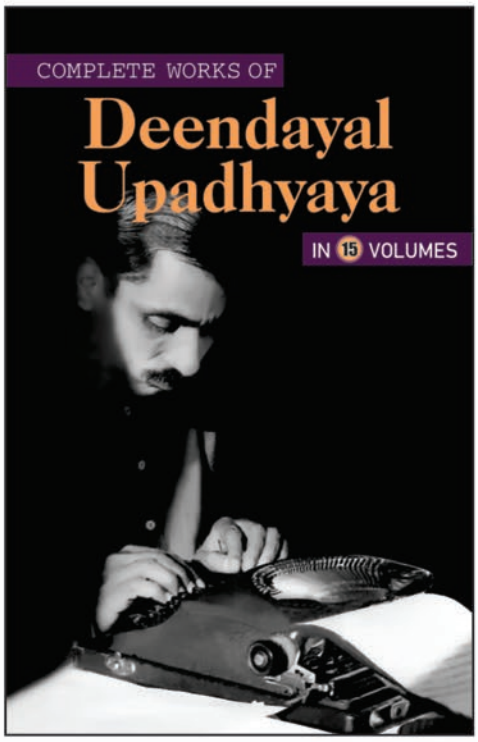

COMPLETE WORKS OF DEENDAYAL UPADHYAYA

(Set of 15 Volumes)

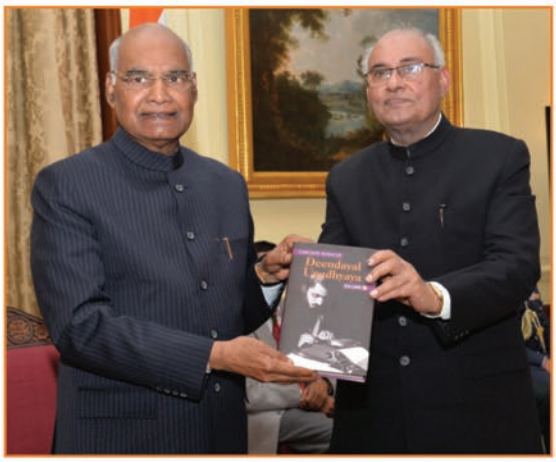

11 फरवरी, 2019 को भारत के राष्ट्रपति मान. श्री राम नाथ कोविंदजी को 'Complete Works of Deendayal Upadhyaya' की प्रथम प्रति भेंट करते हुए प्रधान संपादक डॉ. महेश चंद्र शर्मा

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001:2015 प्रकाशक
4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
हेल्पलाइन नं. 7827007777 ☎ 011-23289777
E-mail : prabhatbooks@gmail.com ✤ Website : www.prabhatbooks.com

एकात्म मानवदर्शन
अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002
☎ 011-23210074
इ-मेल : ekatmrdfih@gmail.com

₹ 200/-

संपादक मंडल
श्री रामबहादुर राय
श्री अच्युतानंद मिश्र
श्री बलबीर पुंज
श्री अतुल जैन
डॉ. भारत दहिया
श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

वर्ष : 44, अंक : 2 अप्रैल-जून 2023

भगत सिंह विशेषांक

संपादक
डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

प्रबंध संपादक
श्री अरविंद सिंह
+91-9868550000
me.arvindsingh@manthandigital.com

सज्जा
श्री नितिन पंवार
nitin_panwar@yahoo.in

मुद्रण
ओसियन ट्रेडिंग को.
132, पटपड़गंज औद्योगिक क्षेत्र,
दिल्ली-110092

प्रकाशक
एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–110002
दूरभाष : 011–23210074; ईमेलः info@manthandigital.com
Website: www.manthandigital.com

अनुक्रम

1.	लेखकों का परिचय		03
2.	संपादकीय		04
3.	अतिथि संपादकीय		05
4.	भगत सिंह की विचारधारा और वामपंथ	डॉ. चंद्रपाल सिंह	08
5.	आजादी के संघर्ष में सशस्त्र क्रांति की भूमिका	डॉ. चंदन कुमार	17
6.	महान बलिदानी का महान परिवार	डॉ. लेजिया लखबीर	21
7.	सरदार भगत सिंह और आर्य समाज	स्वामी सुमेधानंद सरस्वती	26
8.	भगत सिंह और शहादत का संकल्प	डॉ. राधा कुमारी	31
9.	महात्मा गांधी और भगत सिंह कितने पास, कितने दूर	प्रदीप देसवाल	35
10.	भगत सिंह और भाषा एवं लिपि का प्रश्न	प्रो. रसाल सिंह	48
11.	भगत सिंह की साहित्यिक निधि : एक विश्लेषण	हरीश जैन	52

आनुषंगिक आलेख

1.	भगत सिंह का पत्र पिता के नाम		25
2.	सावरकर और भगत सिंह		29
3.	बम की उपासना		41
4.	बम का दर्शन		43
5.	भगत सिंह - एक पुनर्पाठ : इतिहासलेखन, जीवनी और महान शहीद की विचारधारा	डॉ. राहुल चिमुरकर	60
6.	राष्ट्र वंदना पर 52 कड़ियों में भगत सिंह की क्रांति यात्रा		64

आवरण चित्र परिचय : 29 मई 1927 को पहली बार गिरफ्तार भगत सिंह का यह फोटो लाहौर के रेलवे पुलिस लॉक अप में चोरी से खींचा गया

> क्रांति मानव जाति का एक अपरिहार्य अधिकार है। स्वतंत्रता सभी का एक कभी न ख़त्म होने वाला जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रम समाज का वास्तविक निर्वाहक है।
>
> - भगत सिंह

लेखकों का परिचय

डॉ. चंद्रपाल सिंह दिल्ली विश्वविद्यालय के पीजीडीएवी कॉलेज में इतिहास के शिक्षक। 'भगत सिंह रीविजिटेड: हिस्ट्रियोग्राफी, बायोग्राफी ऐंड आइडियोलॉजी ऑफ द ग्रेट मार्टायर' (2011) तथा 'नेशनल एजुकेशन मूवमेंट: अ सागा फॉर क्वेस्ट फॉर आल्टरनेटिव्ज टु कोलोनियल एजुकेशन' (2012) प्रकाशित। आपकी शोधरुचियों में क्रांतिकारी आंदोलन और शिक्षा के इतिहास के अलावा भारतीय संविधान का उद्गम एवं निर्माण तथा जनगणना अध्ययन भी समाविष्ट हैं।

डॉ. चंदन कुमार दिल्ली विश्वविद्यालय के जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (संध्या) में राजनीति विज्ञान विभाग में प्राध्यापक हैं। इनको दिल्ली विश्वविद्यालय से एम फिल और पीएचडी की उपाधि मिली है और इन्होंने सात से अधिक लेखों के अलावा तीन पुस्तकों में भी अध्याय लिखे हैं।

डॉ. लेजिया लखवीर बठिंडा स्थित पंजाब केंद्रीय विश्वविद्यालय के भाषा, साहित्य एवं संस्कृति विभाग में सहायक आचार्य हैं। उनकी 21 पुस्तकें प्रकाशित हैं। शोध पत्रिकाओं में उनके 17 शोधपत्र प्रकाशित हैं। इसके अलावा राष्ट्रीय स्तर की संगोष्ठियों में वे अपने 21 शोधपत्र प्रस्तुत कर चुकी हैं।
संपर्क: lezia.lakhvir@gmail.com

स्वामी सुमेधानंद सरस्वती लंबे समय से आर्य समाज से संबद्ध स्वामी सुमेधानंद सरस्वती ने चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय से संस्कृत में परास्नातक उपाधि प्राप्त की है। सन् 1974 में ही उन्होंने घर छोड़कर आर्य समाज की सदस्यता ग्रहण कर ली और साधु हो गए। उन्होंने एक वैदिक आश्रम की स्थापना की तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्याध्यक्ष भी रहे। सक्रिय राजनीति में आने से पूर्व स्वामी जी ने गोरक्षा के अलावा सांस्कृतिक परंपराओं एवं वेदों की शिक्षा संबंधी अभियान भी चलाया। सन् 2014 से वे सीकर (राजस्थान) से लोकसभा सदस्य हैं।

डॉ. राधा कुमारी दिल्ली विश्वविद्यालय के राजनीति शास्त्र विभाग में सहायक आचार्य हैं। उन्होंने राजस्थान स्थित जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय तथा दिल्ली के माता सुंदरी कॉलेज में भी काफी समय तक शिक्षक कार्य किया है। कई पुस्तकों तथा राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में उनके अध्याय तथा शोधलेख प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी रुचि का क्षेत्र है गांधीवादी शांति अध्ययन।

प्रदीप देसवाल पेशे से इंजीनियर हैं और दिल्ली के द्वारका उपनगर में स्थित प्रतिष्ठित नेताजी सुभाष प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय में कार्यपालक अभियंता के पद पर तैनात हैं। वे भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास, विशेष रूप से क्रांतिकारी आंदोलन, में गहन रुचि रखते हैं। 'राष्ट्र वंदना' के नाम से यूट्यूब चौनल भी चलाते हैं जहाँ भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध कराते हैं। भगत सिंह सहित अनेक क्रांतिकारियों पर सैकड़ों वीडियो बनाए हैं। वर्तमान में नेताजी सुभाष की गौरव गाथा पर वीडियोशृंखला चल रही है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रवादी कविताएँ लिखते हैं जिन्हें मंचों पर भी खूब सराहा जाता है।

रसाल सिंह जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय में हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग में प्रोफेसर और अध्यक्ष के रूप में कार्यरत रसाल सिंह विश्वविद्यालय के अधिष्ठाता, भाषा संकाय और अधिष्ठाता, छात्र कल्याण का भी दायित्व निर्वहन कर रहे हैं। इससे पहले वे दिल्ली विश्वविद्यालय के किरोड़ीमल कॉलेज में अध्यापन कार्य कर चुके हैं और दो कार्यावधि के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय की अकादमिक परिषद के निर्वाचित सदस्य भी रहे हैं। विभिन्न साहित्यिक और सामाजिक-सांस्कृतिक विषयों पर उनकी 6 पुस्तकें और 200 से अधिक शोध-पत्र / लेख प्रकाशित हो चुके हैं।
संपर्क-सूत्र -8800886847)

हरीश जैन प्रकाशन व्यवसाय से जुड़े श्री हरीश जैन इतिहास और साहित्य के गहन अध्येता हैं। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण 'भगत सिंह'स जेल नोटबुक: इट्स कंटेक्स्ट ऐंड रेलिवेंस' शीर्षक पुस्तक (यूनिस्टार बुक्स, चंडीगढ़ से प्रकाशित) का संपादन किया है।

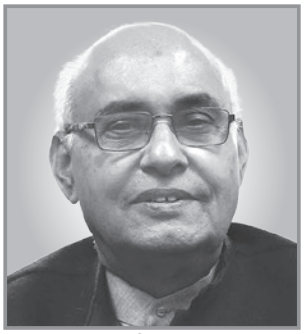

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

संपादकीय

के. आर. मलकानी विशेषांक को सराहना प्राप्त हुई, आभारी हूँ।

वर्ष 2023 का दूसरा अंक सरदार भगत सिंह विशेषांक आपके हाथों में है। इस अंक के संयोजन में अतिथि संपादक डॉ. चंद्रपाल सिंह जी की निर्णायक भूमिका रही है। अंक के लिए अपेक्षित अनुसंधान कार्य का इन्होंने समुचित मार्गदर्शन किया। हर आलेख के संपादन का भी गुरुत्तर दायित्व इन्होंने ही संभाला। मैं कृतज्ञतापूर्वक डॉ. चंद्रपाल सिंह जी को प्रणाम करता हूँ।

श्री प्रदीप देसवाल की विमर्शात्मक भूमिका ने इस अंक के अनुसंधान को तराशा तथा श्री हरीश जैन जी के शोधपरक संविमर्श ने सामग्री की श्रीवृद्धि की। अंक से जुड़े नई पीढ़ी के अनुसंधानकर्ताओं ने अपनी महती भूमिका निभाई। सभी का अभिवादन करता हूँ।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम का विवेचन सरलरेखीय नहीं है। वक्रगति इतिहास का विवेचन सरल कैसे हो सकता है। हमारी आजादी का संघर्ष जिन राहों से गुजरा, इनमें एक तीव्रतम धारा 'सशस्त्र प्रतिकार' की है। उसी के विवेचन का प्रयत्न 'मंथन' के इस अंक में किया गया है।

सरदार भगत सिंह सशस्त्र प्रतिकार के 'क्रांतिकारी आंदोलन' के प्रतीक पुरुष हैं। सशस्त्र प्रतिकार का एक लोमहर्षक इतिहास है और यह अनेक क्षेत्रीय एवं वनवासी प्रतिकारों की कहानी से निबद्ध है। इसकी संपूर्णता का संयोजन एक अंक में संभव नहीं है। क्रांतिकारी आंदोलन की प्रतीकात्मक प्रस्तुति ही हम इस अंक में देख पाएंगे। संकल्पबद्ध शहादत के धनी सरदार भगत सिंह को एक अनुसंधानपूर्ण श्रद्धांजलि का यह अंक है।

अगला अंक भी इस धारा का संवाहक है। सशस्त्र प्रतिकार का अंतिम चरण नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में आगे बढ़ा, भारत की आजादी में इसका निर्णायक योगदान रहा। इसी तथ्य की पड़ताल करता हुआ अगला अंक (जुलाई-सितंबर) नेताजी सुभाषचंद्र बोस विशेषांक रहेगा।

अनुसंधानपरक स्वाध्यायी पाठकों का स्नेह सदैव ही 'मंथन' को प्राप्त रहता है। आपके सुझावों व प्रतिसादों की निरंतर प्रतीक्षा बनी रहती है। शुभम्।

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
mahesh.chandra.sharma@live.com

अतिथि संपादकीय

भगत सिंह पर विशेषांक क्यों?

डॉ. चंद्रपाल सिंह

'आजादी के अमृत महोत्सव' के इस वर्ष में देश स्वतंत्रता के 75वें वर्ष का समारोह और स्मरणोत्सव मना रहा है। एक कृतज्ञ राष्ट्र अपने राष्ट्रीय वीरों के गौरवशाली बलिदानों और उपलब्धियों की कहानी का स्मरण कर रहा है और फिर से सुना रहा है, भगत सिंह पर मंथन का यह विशेष अंक भारत के उस महान सपूत के प्रति एक विनम्र श्रद्धांजलि है, जो शहादत के प्रतीक बने और आज भी अनगिनत भारतीयों के प्रेरणास्रोत हैं।

हमारे स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में किसानों, श्रमिकों, आदिवासियों और भारतीय समाज के कई अन्य तबकों के साथ-साथ क्रांतिकारियों को छिटपुट उल्लेखों, पादटिप्पणियों और परिशिष्टों तक सीमित रखा गया है। भारत के स्वतंत्रता संग्राम को बृहत स्तर पर लोग महात्मा गांधी के नेतृत्व वाले अहिंसक आंदोलन के रूप में देखते हैं। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास लेखन में क्रांतिकारी और सशस्त्र संघर्ष को लंबे समय तक हाशिए पर रखा गया है। क्रांतिकारी आंदोलन का कोई विस्तृत विवरण प्रायः उपलब्ध नहीं है। क्रांतिकारी समूहों को इतिहासकारों ने ज्यादातर वीर युवाओं के छोटे दलो के रूप में देखा है, जिन्होंने शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध एक असमान सशस्त्र लड़ाई लड़ी। उन वीर विभूतियों की जनता में लोकप्रियता और समकालीन घटनाओं पर उनके प्रभाव को क्रांतिकारी आंदोलन की इतिहास पुस्तकों में सत्य नहीं माना गया है। राष्ट्रवादी आंदोलन के आधिकारिक वृत्तांतों में महात्मा गांधी के प्रभुत्व को देखते हुए, दृश्य मानव विज्ञानी क्रिस्टोफर पिन्नी यह देख कर चकित रह गए कि स्वतंत्रता-पूर्व और स्वतंत्रता के बाद के समय में महात्मा गांधी की तुलना में भगत सिंह के चित्र अधिक लोकप्रिय थे। हाल में, अपनी पुस्तक 'ए रिवॉल्यूशनरी हिस्ट्री ऑफ इंटरवॉर इंडिया' में कामा मैक्लीन ने हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन और 'मुख्य' राष्ट्रीय आंदोलन के बीच संपर्कों और संबंधों पर प्रकाश डाला है।

क्रांतिकारी आंदोलन ने भारत के ऐसे सैकड़ों महान पुत्रों को जन्म दिया है, जिनकी वीरता और बलिदान अतुल्य है। ऐसे अनेकानेक नाम हैं, जिनकी गिनती करना कठिन है, जैसे वासुदेव बलवंत फड़के, चापेकर बंधु दामोदर और बालकृष्ण, खुदीराम बोस, मदन लाल ढींगरा, प्रफुल्ल चाकी, करतार सिंह सराभा, बसंत कुमार बिस्वास, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला खान, जतिन दास, चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु, सूर्य सेन आदि।

वैसे तो प्रत्येक शहीद हमारे परम सम्मान का अधिकारी है, किंतु भगत सिंह शहादत के प्रतीक बन गए हैं। भगत सिंह की फाँसी के बाद सुभाष चंद्र बोस ने कहा था कि वह "कोई व्यक्ति नहीं, बल्कि एक प्रतीक हैं। वह विद्रोह की उस भावना के प्रतीक हैं, जो पूरे देश में छाई हुई है।" यदि हम सूक्ष्मता से भगत सिंह का अध्ययन करें, तो पाएंगे कि वह एक क्रांतिकारी शहीद से कहीं बढ़कर थे। अन्य क्रांतिकारी नायकों के विपरीत एक किंवदंती के रूप में भगत सिंह के व्यक्तित्व का निर्माण गिरफ्तारी देने के बाद से जेल में आकर शुरू

होता है, जहाँ इसमें कई आयाम जुड़ते हैं। जैसे कि अदालत में क्रांतिकारियों की गतिविधियों को बौद्धिक तर्कों से सही ठहराना और साथ ही औपनिवेशिक शासन की कलई खोलना, उनकी ऐतिहासिक भूख हड़ताल, अपने मुकदमे की पैरवी खुद को बचाने के बजाय केवल ब्रिटिश न्यायिक व्यवस्था की कलई खोलने और क्रांतिकारी गतिविधियों की लोकप्रियता बढ़ाने के लिए करना तथा औपनिवेशिक हुक्मरान को पूरी तरह हास्यास्पद सिद्ध कर देना आदि। सुव्यवस्थित योजना और अब तक गुप्त तंत्र के तहत जो कार्य उन्होंने किए, उन्हें भारत और अन्य देशों के समाचार पत्रों ने प्रमुखता से प्रकाशित किया और इस प्रकार भगत सिंह का व्यक्तित्व गोपनीय ढंग से काम करने वाले एक अज्ञात क्रांतिकारी तक सीमित नहीं रह गया, बल्कि विस्तृत होकर अपने समय के सर्वाधिक लोकप्रिय व्यक्ति में बदल गया। शहादत के प्रति भगत सिंह का संकल्प असाधारण था। जहाँ उन्होंने अपनी शहादत की योजना बनाई, उसे न्योता दिया, उसके लिए समय नियत किया वहीं उन्हें बचाने के सारे प्रयासों को नाकाम भी कर दिया। भगत सिंह उस समय के प्राय: सभी सुलगते मुद्दों पर अपना मत रखने वाले पहली श्रेणी के बुद्धिजीवी थे, एक उच्च कोटि के लेखक, जिन्होंने कई भाषाओं में लिखा। वह सही अर्थों में एक पुस्तक प्रेमी थे। भगत सिंह उस समय भी पुस्तकें पढ़ कर अपने समय के उल्लेखनीय लोगों व अंतरराष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलनों से जुड़े तथ्यों के अध्ययन की अपनी क्षुधा शांत कर रहे थे जब वह अपनी फाँसी के लिए जल्लाद की प्रतीक्षा में बैठे हुए थे। उन्होंने अकेले ही दिग्भ्रमित कहे जाने वाले देशभक्तों की छवि बदलकर उन्हें क्रांतिकारी के रूप में स्थापित कर दिया और वे सभी समाज के सभी वर्गों के लोकप्रिय नायक बन गए। इस प्रकार क्रांतिकारी आंदोलन को उन्होंने एक मानवीय और लोकप्रिय स्वरूप दिया। ये सारे कार्य उन्होंने अपनी चौबीस वर्ष की आयु के पहले पूरे कर लिए।

उनकी लोकप्रियता क्षेत्र, धर्म, भाषा और विचारधारा की सभी सीमाओं को पार करती बढ़ती गई। यह स्वाभाविक ही है कि कई विचारधाराओं व पार्टियों ने उन्हें अपना बताने का प्रयास किया है। उन्हें अपना बताने का सर्वाधिक जोरदार और सुव्यवस्थित प्रयास वामपंथियों ने किया है जो उन्हें केवल एक शहीद की बजाय एक मार्क्सवादी विचारक मानते हैं। भगत सिंह की विचारधारा का इस्तेमाल भारत के वामपंथी अपने राजनीतिक अस्तित्व को समाप्त होने से बचाने के लिए कर रहे हैं। अपने इस हित साधन के लिए वे भगत सिंह की मृत्यु के बाद 'प्राप्त' आलेखों को बिना सोचे-समझे उन्हीं का बताते हैं। वहीं वे उनकी परिवारिक विरासत व आर्य समाज जैसी उनकी धारणाओं की अनदेखी करते हैं।

भगत सिंह उच्छृंखल और उद्देश्यहीन भौतिकवाद के पीछे भाग रहे आज के युवाओं का भी आदर्श हो सकते हैं। जरूरत इस बात की है कि उनके व्यापक ज्ञान, मुखरता, आत्मा की निश्छलता, उद्देश्य के प्रति अटलता, उत्कृष्ट वीरता और नि:स्वार्थ देशभक्ति के उनके व्यक्तिगत गुणों को घर-घर तक पहुँचाया जाए। वहीं, इस महान शहीद की विचारधारा को लपक लेने के विध्वंसकारी और राष्ट्रविरोधी तत्वों के नापाक इरादों को उजागर करने के साथ-साथ उनका विरोध किया जाए।

इस अंक में चंदन कुमार ने सन् 1922 से शुरू हुए ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सशस्त्र प्रतिरोध का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है, जब असहयोग आंदोलन अचानक रोक दिया गया था। हालांकि 1857 के विद्रोह के कुचलने जाने के कुछ ही समय बाद वासुदेव बलवंत फड़के के नेतृत्व में भारतीयों ने फिर से सशस्त्र संघर्ष शुरू कर दिया, किंतु 1922 में एक नया और निर्णायक संघर्ष शुरू हुआ, जो रॉयल इंडियन नेवी के 1945 के विद्रोह के साथ समाप्त हुआ। भगत सिंह की वंशावली पर अपने आलेख में लेजिया लखवीर ने एक परिवार की उन पाँच पीढ़ियों का उल्लेख किया है, जिन्होंने स्वयं को राष्ट्र के नाम समर्पित कर दिया। स्वामी सुमेधानंद सरस्वती ने भगत सिंह को उस शिखर तक पहुँचाने में आर्य समाज

की भूमिका का वर्णन किया है। रसाल सिंह ने राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने और अंग्रेजी भाषा में उपनिवेशवाद की समस्या के संदर्भ में भाषा और लिपि की समस्या पर भगत सिंह के विचार पर प्रकाश डाला है। हरीश जैन ने भगत सिंह के 8 अप्रैल, 1929 को सेंट्रल असेंबली में गिरफ्तारी देने से पहले की उनके जीवन चरितों व लेखनों से संबद्ध अल्प ज्ञात तथ्यों समेत उनकी साहित्यिक निधि का सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत किया है। प्रदीप देसवाल ने भगत सिंह को बचाने के गांधी के प्रयास पर हुए तीव्र वाद-विवाद के अतिरिक्त गांधीजी व भगत सिंह के बीच मतैक्यता और मतभेद को रेखांकित किया है। डॉ. राधा कुमारी ने भगत सिंह की शहादत की जीवनपर्यंत तलाश पर प्रकाश डाला है। स्वयं इस लेखक ने भगत सिंह की विचारधारा को हड़प लेने के वामपंथी विद्वतवर्ग व राजनीतिक दलों के प्रयासों पर लिखा है। साथ ही, उनकी वैचारिक यात्रा के वस्तुगत मूल्यांकन का एक प्रयास भी किया है। निश्चित रूप से, भगत सिंह और सावरकर दोनों के प्रति जानबूझकर अनेकानेक भ्रांतियाँ फैलाई गई हैं। एक को पंथनिरपेक्षता और दूसरे को हिंदुत्व जैसे दो ध्रुवों पर रखकर झूठमूठ में विरोधी विचारधारा के वाहक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस मिथ्या् धारणा को अलग से एक आनुषंगिक लेख के रूप में विक्रम संपत के 'सावरकर: एक विवादित विरासत 1924-1966' के एक अंश को 'सावरकर और भगत सिंह' शीर्षक से प्रस्तेुत कर सत्य उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत अंक की परिकल्पना इस महान शहीद के जीवन और काल के विभिन्न पहलुओं के गहन विश्लेषण को पाठकों तक पहुँचाने के लिए की गई थी। किंतु, कुछ परिस्थितिवश इस अंक के लिए परिकल्पित पाठक भगत सिंह, ब्रितानी प्रलेखों में भगत सिंह, अपने समकालीनों की दृष्टि में भगत सिंह, भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन पर बोल्शेविक क्रांति का प्रभाव, भारत के स्वतंत्रता संग्राम (1857-1920) में सशस्त्र क्रांतिकारियों की भूमिका तथा सावरकर एवं भगत सिंह जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर यथेष्ट शोधकार्य पूरा नहीं हो सका। हमारा प्रयास रहेगा कि भविष्य में इन विषयों पर भी कार्य पूरा हो सके।

हमें आपकी बहुमूल्य टिप्पणियों और सुझावों की प्रतीक्षा है।

वंदे मातरम! जय हिंद!

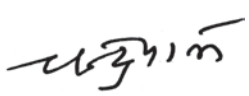

डॉ. चंद्रपाल सिंह

डॉ. चंद्रपाल सिंह

भगत सिंह की विचारधारा और वामपंथ

वामपंथियों द्वारा भगत सिंह पर एकाधिकार जमाने के प्रयास एवं शहीदे-आजम की विचारधारा का एक यथार्थपरक विवेचन

निःसंदेह भारत की आम जनता भगत सिंह की नि:स्वार्थ राष्ट्रभक्ति, निर्भयता एवं लक्ष्य के प्रति एकांत निष्ठा तथा तेइस वर्ष की आयु में उनके बलिदान के कारण उनसे प्यार करती है, परन्तु गत कुछ दशकों में भगत सिंह पर प्रकाशित पुस्तकों और लेखों द्वारा हमें यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया जाता रहा है कि वह एक लोकप्रिय बलिदानी होने के साथ-साथ एक वामपंथी विचारक भी थे। किंतु, तनिक अधिक गहराई से विचार करने पर यह तथ्य हमारे सामने खुलकर आ जाता है कि वास्तव में वामपंथियों द्वारा इस बहाने भगत सिंह का उपयोग राष्ट्रवाद, जाति और भाषा विषयक अपने एजेंडे को पोषित करने के लिए किया जा रहा है। भगत सिंह के बलिदान के पश्चात, तथाकथित रूप से उनके लेखन को खोज कर यह स्थापित किया जा रहा है कि वह एक उदीयमान वामपंथी विचारक थे जिन्हें विभिन्न विषयों पर लिखने का अवसर मिला था यद्यपि उन्होंने यह सब छद्म नामों से लिखा।

वामपंथियों ने घटाया भगत सिंह का मान

कुछ ही समय पहले प्रकाशित, भगतसिंह की रचनाओं के एक संग्रह के संपादक एस. इरफान हबीब इसकी भूमिका में लिखते हैं कि भगत सिंह मात्र राजनीतिक आजादी को समर्पित नहीं थे बल्कि वे इंकलाब अथवा क्रांति के प्रति कटिबद्ध थे। वह एक क्रांतिधर्मी दृष्टि से संपन्न थे और स्वतंत्र भारत को एक पंथनिरपेक्ष, समाजवादी और समतामूलक समाज में परिवर्तित करना चाहते थे।[1]

परन्तु यह तो वामपंथी विद्वानों का अपेक्षाकृत लचीला पक्ष है। कट्टर वामपंथ तो भगत सिंह की विरासत को उपयोग करने के लिए और आगे जाता है। कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी लेनिनवादी) के जनरल सेक्रेटरी विनोद मिश्रा के अनुसार भगत सिंह सच्चे नायक थे क्योंकि उन्होंने लेनिन की तरह ही युवकों को मजदूरों और किसानों में वर्ग चेतना उत्पन्न करने तथा पेशेवर क्रांतिकारियों की कम्युनिस्ट पार्टी खड़ा करने के लिए प्रेरित किया था।[2] भारत में खंडित साम्यवादी आंदोलन के विभिन्न गुटों ने भगत सिंह की विचारधारा और छवि को अपने साँचे में ढालने का प्रयास किया है। सी.पी.आई. (एम.) ने अपने एक आधिकारिक प्रकाशन में, भगत सिंह एवं उनके साथियों के जीवन, क्रिया कलापों और विचारों में निहित "चार दृढ मान्यताओं को जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास करने का आह्वान किया ---(क) साम्राज्यवाद के विरुद्ध सुदृढ संघर्ष (ख) सांप्रदायिकता और जातिगत दमन का अदम्य विरोध (ग) बुर्जुआ जमींदारी शासन के विरुद्ध अचल विरोध, तथा (घ) समाज के सम्मुख एकमात्र विकल्प के रूप में मार्क्सवाद और समाजवाद में सुदृढ आस्था"।[3] एक अन्य वामपंथी प्रकाशन में भगत सिंह की प्रासंगिकता 'अमरीकी साम्राज्यवाद' 'साम्राज्यवादी भूमंडलीकरण' और 'नव-उपनिवेशवाद' के विनाश - जैसे शब्द जाल द्वारा बताई गई है जिसका प्रयोग साम्यवादी विश्व भर में करते हैं।[4]

भारतीय साम्यवादी इस सीमा तक चले गए कि उनके अनुसार उनके सिवा अन्य किसी को भी भगत सिंह के पुण्य-स्मरण का अधिकार नहीं है। सीपीआई (एमएल) के मुख-पत्र 'लिब्रेशन' ने अपने अक्तूबर 2006 के अंक में लिखा, "भगत सिंह, भारत के क्रांतिकारी लोगों के लिए ही प्रेरक मूर्ति हो सकते हैं।"[5] भगत सिंह की किसी भी गैर साम्यवादी व्याख्या के विरुद्ध वामपंथी कड़ी

प्रतिक्रिया देते हैं। प्रो. चमन लाल, जिन्होंने संभवत: भगत सिंह पर सर्वाधिक सामग्री प्रकाशित की है, लिखते हैं -

"वर्तमान में भगत सिंह की विरासत पर कब्जा करने के प्रयास अनेक शक्तियों द्वारा किए जा रहे हैं। मुख्य धारा का राष्ट्रवादी इतिहास लेखन और उससे जुडी वर्तमान राजनीतिक धारा, कांग्रेस, उन्हें एक निस्वार्थ, देशभक्त मानती है परन्तु उनकी मजबूत कांग्रेस विरोधी दृष्टि की अवहेलना करती है। विशेष रूप से कांग्रेस, भगत सिंह की, मार्क्सवादी विचारधारा को अनदेखा करती है। इससे भी कहीं अधिक अन्याय भगत सिंह के प्रति धुर दक्षिणपंथी हिंदुवादी संगठन आर. एस. एस. और उसके अनुषंगिक संगठन करते हैं - वे भी भगत सिंह की क्रांतिकारी विरासत पर हक जताना चाहते है। यह एक ऐसा प्रयास है जिसे अश्लील ही कहा जा सकता है, हिंदू दक्षिणपंथ हमें विश्वास दिलाना चाहता है कि भगत सिंह बृहत् हिंदू राष्ट्र के समर्थक थे और भारत माता को भक्त थे। भगत सिंह की 'नोट बुक' और अन्य रचनाओं पर दृष्टिपात मात्र से इस झूठ का पर्दाफाश किया जा सकता है।"[6]

25 मार्च 2007 में जब एक हिंदी साप्ताहिक 'पांचजन्य' ने भगत सिंह पर विशेषांक निकाला तो वामपंथियों ने अनर्गल प्रलाप किया। किशोर जामदार ने पांचजन्य के सम्पादक के नाम एक खुला पत्र लिखा जिसे अनेक वामपंथी प्रकाशनों; यथा 'हंस' (संपादक राजेन्द्र यादव) और 'फिलहाल'- (संपादक प्रीति सिन्हा) में छापा गया। जामदार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसके आनुषंगिक संगठनों पर सीधे आरोप लगाते हुए लिखा- "तुम्हारा भगत सिंह की विचारधारा से कोई लेना-देना नहीं है। आपका एकमात्र लक्ष्य उसकी लोकप्रियता से लाभ उठाना है, भले ही इसके लिए तुम्हें इतिहास का भी अंगभंग करना पडे, और यह तो तुम्हारे बाएँ हाथ का काम है।"[7]

सीपीआई (एम) के तत्कालीन महासचिव, प्रकाश करात ने, भगत सिंह के जन्म शताब्दी समारोहों की कड़ी में मुंबई में आयोजित एक राष्ट्रीय संगोष्ठी[8] में भगत सिंह पर बोलते हुए अपने राजनीतिक विरोधियों पर हमला बोलते हुए कहा,

"भगत सिंह जिस विचारधारा और जीवन-दृष्टि के पोषक थे वह आरएसएस और हिंदू महासभा द्वारा प्रतिपादित हिंदू सांप्रदायिक विचारधारा और नीतियों का प्रत्यख्यान करती थी। भगत सिंह की सशक्त धर्म निरपेक्ष, सांप्रदायिकता विरोधी समाजवादी विचारधारा को छुपाने के लिए आर.एस.एस. उन्हें उन पूज्य नायकों की श्रेणी में लाकर स्थापित कर देती है जिसमें वीडी सावरकर और अरविंदो घोष भी आते हैं जो हिंदू कट्टरवाद के प्रतिनिधि हैं। भगत सिंह को एक युवा बलिदानी तक सीमित करके उसकी सांप्रदायिकता एवं जातिवाद विरोधी स्पष्ट समाजवादी सोच से उन्हें अलगाना, उनकी स्मृति के साथ अन्याय करना है।"[9]

करात ने अपने भाषण का समापन इस बात पर जोर देते हुए किया कि "प्रतिक्रियावादी और पश्चगामी शक्तियों से मुकाबले के लिए भगत सिंह को आदर्श उदाहरण माना जाना चाहिए।"[10]

राहुल फाउंडेशन, लखनऊ केंद्रित एक चरमपंथी वामपंथी समूह है, जिसने भगत सिंह को मार्क्सवादी के रूप में प्रचारित करने में बड़ी भूमिका निभाई है। इस संस्थान का घोषित लक्ष्य है: "घोर पूँजीवाद पर आधारित वर्तमान समाज-व्यवस्था को पूर्णतया ध्वस्त कर एक नवीन श्रमिक क्रांति लाना, जिससे उनके अनुसार भगत सिंह और उसके साथियों का स्वप्न साकार हो सके।"[11] इस फाउंडेशन द्वारा बहुत कम कीमत पर भगत सिंह विषयक दस्तावेजों का 692 पृष्ठ का एक संग्रह प्रकाशित किया गया है और इसके अतिरिक्त, अलग से भगत सिंह की जेल डायरी तथा अन्य पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित की है। इस संग्रह के संपादक सत्यम ने इसकी भूमिका में लिखा है कि भगत सिंह का महत्त्व इस बात में है कि उन्होंने साम्राज्यवाद के नए स्वरूपों, पूँजीवाद और भारत में दलीय प्रजातंत्र की असफलता विषयक प्रश्न उठाए :

"यह मानने का एक निरपेक्ष आधार है कि यदि भगत सिंह जीवित रहते और उन्हें अपनी साम्यवादी पार्टी बनाने का अवसर मिलता या फिर वे साम्यवादी दल में शामिल होकर उसे अपनी समझ के अनुरूप नया रूप दे पाते तो संभवत: भारत में साम्यवादी आंदोलन और भारत का इतिहास अलग तरह से लिखा जाता"[12]

एक अन्य पुस्तिका 'विचारों की सान पर' में सत्यम ने 'संसदीय साम्यवादी दल' पर हमला करते हुए कहा है कि 1951 के बाद संसदीय दल के रूप में परिवर्तित हो जाने के पश्चात इस दल ने भगत सिंह के आदर्शों और सपनों के उत्तराधिकारी होने का अधिकार खो दिया है।[13]

स्वाधीनता सेनानी या 'आतंकवादी'

यद्यपि आज का वामपंथ भगत सिंह को अपने विचारक, पूज्य-पुरुष और नायक के

रूप विश्व के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहता है परंतु भगतसिंह और उसके साथियो के विषय में समकालीन साम्यवादियों के विचार आँख खोल देने वाले हैं। स्वाधीनता संग्राम के दिनों में भगत सिंह और उनके क्रांतिकारी दल (एच.एस.आर.ए.) के उनके साथियों को साम्यवादी अपने 1950 के पूर्व के दस्तावेजों और कथनों में पूरी तरह आतंकवादी और 'पैटी बुर्जुआ' के रूप में, घोषित करते रहे हैं। 'मेरठ षड्यंत्र' मामले में, साम्यवादी दल के प्रारंभिक प्रमुख नेताओं जी. अधिकारी, बी. घाटे, के.एम. जोगलेकर, पी.सी. जोशी, एम.ए. माजिद, मुजफ्फर अहमद, सोहन सिंह जोश और शौकत उस्मानी आदि के बयानों से साम्यवादी दल की एचएसआरए की नीतियों और कार्यक्रमों के प्रति आधिकारिक स्थिति बिलकुल साफ हो जाती है।

"हम आतंकवाद का विरोध हिंसा के विचार को लेकर नहीं करते बल्कि हम एक व्यावहारिक राजनीतिक दल की नीति के रूप में हम इसकी व्यर्थता को लेकर आश्वस्त है। व्यक्तिगत आतंकवाद वास्तव में 'निम्न बुर्जुआ' नीति है - इसका आरंभ आक्रमण करने वाले व्यक्ति विशेष की भूमिका को बढ़ा-चढ़ा कर अंकित करने से होता है। जैसे जैसे जन आंदोलन विकसित होता है और क्रांतिकारी शक्ति के रूप में उसकी भूमिका स्पष्ट होने लगती है तब आतंकवादियों का स्थान जन आंदोलन से ऊपर प्रतीत होता है और इस पर आधारित कुछ दल जैसे रूस की सोशलिस्ट रेवोल्यूशनरी पार्टी (अथवा कृषक आतंकवादी दल) और अपने प्रारंभिक दौर में 'सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया' ने ऐसा ही किया। परंतु जब आतंकवाद की नीति कार्यक्रम का हिस्सा रहती है तो वह दल के सर्वाधिक सक्रिय और आत्म-बलिदानी कार्यकर्त्ताओं की सारी शक्ति को सोख लेती है और अनावश्यक रूप से क्रान्तिकारी न केवल अपने आपको बल्कि अपने साथियों को पुलिस के सम्मुख परोस देते हैं। परिणामस्वरूप, हम इसका सहायक नीति के रूप में भी विरोध करते हैं।"[14]

कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया के 1935 से 1948 तक जनरल सेक्रेटरी रहे पी. सी. जोशी ने यह उद्घाटित किया था कि, "मेरठ के सेशन जज के सम्मुख जो हमने सामूहिक बयान दिया था वह पूरी तरह 1928 में आयोजित 'छठी कांग्रेस' में पारित 'कम्युनिस्ट इंटरनेशनल' की नीति के अनुरूप था।"[15] जैसा कि सर्वविदित है, रूस में स्थित कम्युनिस्ट इंटरनेशनल भारत की कम्युनिस्ट पार्टी को अपने इशारों पर नचाता था।

एक साम्यवादी पत्रिका 'वर्कर्स वीकली', जो कि साम्यवादी दल का साप्ताहिक प्रकाशन था उसमें 13 नवंबर 1930 को भगत सिंह और उसके साथियों के विषय में छपा था कि आतंकवाद की नीति वैयक्तिक प्रतिशोध की मनोवृत्ति पर आधारित है, न कि क्रांति।[16] वर्ष 1951 तक भी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेता क्रांतिकारियों द्वारा की भर्त्सना यह कहकर करते रहे कि ये मार्क्सवाद के अनुरूप नहीं हैं और प्रतिकूल परिणामकारी हैं। 1951 में दिसंबर में कोलकाता में आयोजित सीपीआई की विशेष पार्टी कॉन्फ्रेंस में स्वीकृत 'भारतीय क्रांति की अगामी सामरिक नीति' में दल ने क्रांतिकारियों के साहसिक कार्यों का अवमूल्यन कर उन्हें 'वैयक्तिक आतंकवादी' घोषित कर दिया जो कि साम्यवाद में स्वीकार्य नहीं हैं।

"वैयक्तिक आतंकवाद, वर्ग विशेष के व्यक्तियों अथवा व्यवस्था से जुड़े व्यक्तियों के विरुद्ध कुछ व्यक्तियों, समूहों अथवा दस्तों द्वारा किया जाता है। जो व्यक्ति यह कार्य करते हैं वे बहादुर, नि:स्वार्थ हो सकते हैं यहाँ तक कि लोग उन्हें ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित भी कर सकते हैं तथा जिनके विरुद्ध वे यह कार्य करते हैं, हो सकता है वे सर्वाधिक घृणित लोग हों। फिर भी ऐसे कार्यों की अनुमति मार्क्सवाद नहीं देता। ऐसा क्यों है? इसका सहज कारण यह है कि इसमें जनता क्रियाशील नहीं होती - अंतत: यह जनता में जड़ता और अकर्मण्यता को बढ़ावा देता है- उनकी अपनी सक्रियता को समाप्त करता है जिससे क्रांति का विकास रुकता है और परिणाम स्वरूप पराजय मिलती है।[17]

भगत सिंह पर कम्युनिस्टों का यू-टर्न

इस प्रकार जब स्वाधीनता संग्राम के दिनों में साम्यवादी भगत सिंह और उसके साथियों को 'आतंकवादी' घोषित कर उनके कार्यों की भर्त्सना करते रहे तो यह जानना उपयोगी होगा कि कैसे स्वतंत्र भारत में वही साम्यवादी भगत सिंह को कैसे अपना पूज्य पुरुष मानने लगे। इस विस्मयकारी यू-टर्न का प्रारंभ 1950 के दशक में 'भगत सिंह : द मैन एंड हिज आइडियाज' नामक पुस्तक के 1953 में प्रकाशन से प्रारंभ हुआ। इस पुस्तक की रचना जी.एम. तेलंग ने, गोपाल ठाकुर के (छद्म) नाम से, अजय घोष के कहने पर की थी।[18] पुस्तक का लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि भगतसिंह, भारतीय स्वाधीनता संग्राम विषयक साम्यवादी पुरोधाओं की समझ से सहमत थे। भगत सिंह सोवियत साहित्य के अध्ययन के परिणामस्वरूप मजदूरों और किसानों की आर्थिक माँगों की पूर्ति के लिए दल के गठन की आवश्यकता से सहमत होने लगे थे जो ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आजादी की लड़ाई के साथ-साथ चलने वाला महत्त्वपूर्ण कार्य था परंतु अंग्रेजों द्वारा फाँसी पर चढ़ा दिए जाने से उनका यह काम अधूरा रह गया और आगे चलकर मार्क्स, एंग्ल्स, लेनिन और स्टालिन' को और पढ़ने का काम भी वह न कर सके।[19] शिव वर्मा जो कि एच. एस. आर. ए. के दिनों में भगत सिंह के साथी थे और अब कम्युनिस्ट बन चुके थे, उन्होंने इस पुस्तक की भूमिका में लिखा- कि भगत सिंह क्रांतिकारियों और साम्यवादी आंदोलन के बीच पुल का काम कर रहे थे।[20]

सी. पी. आई. का यह यू-टर्न एक बड़े बदलाव से जुड़ा था जिसमें उसने भारतीय आजादी, संविधान, तैलंगना, गांधीजी और स्वाधीनता संग्राम के विषय में साधारणतया अपनी धारणाएँ बदलीं।[21] सी. पी. आई. की नीतियों में इन बदलावों के पीछे बदली हुई उन भू-रणनीतिक वास्तविकताओं की स्वीकृति थी जो कि 1950 के दिसंबर में स्टालिन और कॉमिंटर्न द्वारा जारी निर्देशों के अनुरूप ढाली गई थीं। सी. पी. आई. ने 15 अगस्त 1951 को पहली बार स्वाधीनता -दिवस के रूप में मनाया। 1951 में ही तैलंगना आंदोलन औपचारिक रूप से वापस ले लिया गया। इस वर्ष उन्होंने गांधी जी का जन्म दिन भी मनाया था। सी. पी. आई. ने प्रथम आम चुनावों में भाग लेने का निर्णय भी लिया। भारतीय इतिहास का संपूर्ण संशोधित रूप जैसा कि एम. एन. रॉय (इंडिया इन ट्रांजिशन, 1922) और रजनी पाम दत्त (इंडिया टुडे, 1940) के रूप में

प्रस्तुत किया गया। वयोवृद्ध साम्यवादी नेता मोहित सेन ने अपनी आत्मकथा में इस नई नीति पर लिखा :

"लंबे समय से हमारी राष्ट्रीय क्रांति को, क्रांति का दर्जा नहीं दिया गया। इस पर छींटाकशी करना एक फैशन सा बन गया था ...विशेष रूप से गांधी की भर्त्सना यह कह कर की जाती रही कि वह समझौतावादी, परंपरावादी, अंधविश्वासी नेता थे जिन्होंने जनक्रांति को बाधित किया और इस प्रकार ब्रिटिश उपनिवेशवादियों की सहायता की। उनका मूल्यांकन अधिक से अधिक भारतीय पूँजीपतियों के प्रतिनिधि के रूप में किया गया। नेहरू को उनके विश्वस्त सहायक के रूप में चित्रित किया गया जिन्होंने जनता से धोखा किया।"[23]

भगत सिंह की रचनाओं द्वारा उसकी समाजवादी विशिष्टताओं को सामने लाने का प्रयास, शिव वर्मा द्वारा 1969 में प्रकाशित 'स्मृतियों' में हुआ, जिसमें उनका लेख 'इन्ट्रोडक्सन टु-ड्रीमलैंड' (स्वपन लोक की भूमिका) पहली बार सामने आया। वर्मा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि क्रांतिकारियों में भगत सिंह वह पुरोधा थे जो मार्क्सवाद की ओर आकर्षित हुए। भगत सिंह को मार्क्सवादी के रूप में स्थापित करने में मित्रोखिन नामक रूसी शोधकर्ता की भूमिका महत्वपूर्ण रही जिसने 'भारत पर लेनिन के प्रभाव' पर शोध किया। इस दिशा में उसने तीन पुस्तकें लिखी - 'एवरेस्ट अमंग मैन' (1969), 'लेनिन इन इंडिया' (1981) तथा 'लेनिन एंड इंडियन फ्रीडम फाइटर्स' (1988)। इस पुस्तकों में मित्रोखिन ने भगत सिंह पर विशेष ध्यान दिया और यह स्थापित करने का प्रयास किया किया कि भगत सिंह अपने अंतिम दिनों में मार्क्स और लेनिन की रचनाओं से अत्यधिक प्रभावित रहे।

भारतीय वामपंथी विद्वानों ने भगत सिंह पर 1970 के दशक से ध्यान देना प्रारंभ किया। इतिहासकार बिपन चंद्र ने अपनी 1972 में प्रकाशित कृति 'द आइडियोलिजिकल डिवेलपमेंट ऑफ द रिवोल्यूशनरी टेररिस्ट्स इन नॉर्थ इंडिया, ईन नाइनटीन ट्वेंटीज' में यह निष्कर्ष निकाला कि यद्यपि समाजवादी विचारधारा और कार्यप्रणाली में अनेक अंतर्विरोध थे, "भगत सिंह में निहित समाजवादी ने अंतत: आतंकवादी पर विजय पा ली थी।"[24] बिपन चन्द्र का भगत सिंह की विचारधारा विषयक संकोच अंतत: 1972 में पूरी तरह गायब हो गया जब उन्होंने घोषणा की कि भगत सिंह, मार्क्स, एंगल्स और लेनिन की परंपरा में विश्लेषणात्मक क्रांतिकारी मस्तिष्क के स्वामी थे।"[25]

1984 में वरिष्ठ सी. पी. आई. नेता ए. बी. बर्धन ने भगत सिंह पर पुस्तक लिखी। बर्धन को पूर्ण विश्वास था कि यदि भगत सिंह को फाँसी न होती तो वह निश्चय ही साम्यवादी आंदोलन के साथ होते :

"यह बिल्कुल स्पष्ट है कि भगत सिंह निश्चित रूप से 'क्रांतिकारी आतंकवादी' से मार्क्सवादी बन रहे थे। भाग्य ने उन्हें मार्क्सवादी-लेनिनवादी के रूप में परिपक्व होने का अवसर नहीं दिया। परंतु उन्होंने अपनी जीवन-नौका को जिस रास्ते पर डाल दिया था वह निश्चित रूप से उसे साम्यवादी आंदोलन तक ले जाने वाली थी, जैसा कि उनके अधिकांश साथियों के साथ हुआ, यदि जल्लाद के फाँसी के फंदे ने उनकी जीवन लीला समाप्त न कर दी होती।"[26]

भगत सिंह की विचारधारा को मार्क्सवादी विचारधारा में रंगने की प्रक्रिया, शिव वर्मा द्वारा प्रकाशित 'सेलेक्टेड राइटिंग्स ऑफ भगत सिंह' (1986) के साथ पूर्ण हो गई। शिव कुमार वर्मा के संग्रह के प्रकाशन का तथाकथित उद्देश्य क्रांतिकारियों की सामान्य रूप से और भगत सिंह पर विशेष रूप से फैलाई भ्रांतियों को दूर करना था, जैसे कि क्रांतिकारी प्रारंभ से लेकर अंत तक हिंदू राष्ट्रवादी रहे.... इस आंदोलन का लक्ष्य मात्र अंग्रेजों को भारत से निकालकर हिंदू राज की स्थापना करना था... वे सोवियत रूस के केवल समाजवादी आदर्शों के पक्षधर थे न कि उस देश में स्थापित सर्वहारा की तानाशाही के समर्थक थे।"[27] शिव वर्मा के अनुसार 1928 तक भगत सिंह ने समाजवाद को लक्ष्य के रूप में स्वीकार कर लिया था परंतु अतीत के विचारों की छाया अभी भी मौजूद थी। कारावास में गहन अध्ययन और विचार विमर्श के परिणामस्वरूप अपने अंतिम समय में वे पक्के मार्क्सवादी बन चुके थे। पहले से ही उपलब्ध भगत सिंह का एक लेख जो कि 2 फरवरी 1931 का बताया जाता है उसके एक भिन्न संस्करण के आधार पर शिव वर्मा ने निष्कर्ष दिया, "भगत सिंह खुलकर मार्क्सवाद, साम्यवाद और साम्यवादी दल के पक्ष में आ गए थे।"[28]

भगत सिंह की विचारधारा

1923 में सोलह वर्षीय भगत सिंह ने क्रांतिकारी आंदोलन में भाग लेने के लिए घर छोड़ते हुए अपने पिता के नाम एक पत्र में लिखा था, "मेरा जीवन पहले ही एक महान लक्ष्य को समर्पित हो चुका है- यह लक्ष्य है देश की आजादी।"[29] सात वर्ष पश्चात्, अक्तूबर 1930 में जेल की कालकोठरी में फाँसी के फंदे की प्रतीक्षा करते हुए भगत सिंह ने अपनी जीवनयात्रा पर चिंतन करते हुए एक निबंध 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' में लिखा था, "इस लोक अथवा परलोक में किसी भी स्वार्थयुक्त लक्ष्य अथवा इच्छा से पूरी तरह मुक्त होकर पूरी तरह अनासक्त भाव से मैंने अपना जीवन देश की आजादी के लिए समर्पित किया है- क्योंकि मैं इसके अतिरिक्त और कुछ कर ही नहीं सकता था।"[30] इस प्रकार, भगत सिंह के संपूर्ण क्रांतिकारी जीवन की ज्वलंत प्रेरणा देशभक्ति

1923 में सोलह वर्षीय भगत सिंह ने क्रांतिकारी आंदोलन में भाग लेने के लिए घर छोड़ते हुए अपने पिता के नाम एक पत्र में लिखा था, "मेरा जीवन पहले ही एक महान लक्ष्य को समर्पित हो चुका है- यह लक्ष्य है देश की आजादी।" सात वर्ष पश्चात्, अक्तूबर 1930 में जेल की कालकोठरी में फाँसी के फंदे की प्रतीक्षा करते हुए भगत सिंह ने अपनी जीवनयात्रा पर चिंतन करते हुए एक निबंध 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' में लिखा था, "इस लोक अथवा परलोक में किसी भी स्वार्थयुक्त लक्ष्य अथवा इच्छा से पूरी तरह मुक्त होकर पूरी तरह अनासक्त भाव से मैंने अपना जीवन देश की आजादी के लिए समर्पित किया है

ही रही है।

भगत सिंह को देशभक्ति और बलिदान की परंपरा, परिवार से ही प्राप्त हुई थी। सिख परिवार में जन्म लेने के कारण सिख गुरुओं की बलिदान गाथाओं से जुड़े। विरासत में प्राप्त उनके जीवन-मूल्यों में आर्य समाज का राष्ट्रवाद का संदेश भी शामिल था। बीसवीं सदी के प्रारंभ में आर्य समाज पंजाब में देशभक्ति की पौधशाला थी। भगत सिंह के प्रारंभिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों में करतार सिंह सराभा एवं गदर पार्टी से जुडे लोगों का बलिदान, जलियांवाला बाग की त्रासदी, बब्बर अकालियों की वीरगाथाएँ तथा निकट संपर्कों का समग्र प्रभाव पड़ा जिनमें जयचंद्र विद्यालंकार, भाई परमानंद और शचींद्र नाथ सान्याल भी थे। इन प्रारंभिक प्रभावों के कारण ही उनमें देशभक्ति का श्रेष्ठतम रूप विकसित हुआ जिसमें राष्ट्र के लिए बलिदान अथवा राष्ट्र के लिए सर्वस्व अर्पण का भाव जिससे देशवासियों को औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध जागृत किया जा सके। उनके संपूर्ण क्रांतिकारी जीवन में बलिदान का भाव सर्वोपरि रहा।

भगत सिंह का क्रांतिकारी जीवन शचींद्र नाथ सान्याल, जोगेश चंद्र चटर्जी एवं चंद्रशेखर आजाद जैसे प्रख्यात क्रांतिकारियों के संपर्क से प्रारंभ हुआ। क्रांतिकारी दल की बलिदान में दृढ आस्था थी। उनके क्रांतिकारी दल के घोषणा पत्रों पर यह कथन अंकित रहता था, "बलिदानियों के रक्त से ही आजादी का कोमल पौधा पुष्ट होता है।"[31] भगत सिंह के बलिदान और देशभक्तिपरक विचार देशभक्तिपूर्ण साहित्य के पठन से और अधिक पुष्ट एवं परिष्कृत हुए। उसे विशेष रूप से गोर्की का उपन्यास 'माँ' विक्टर ह्यूगो का ('नाइनटी थ्री' और 'लेस मिजरेबल्स', डिकेंस का 'टेल ऑफ टू सिटीज' और सिनक्लेयर के 'जंगल' 'बोस्टन' तथा किंग कोल"[32] आदि ऐसे उपन्यासों" से भगत सिंह के मस्तिष्क में विद्यमान बलिदान की धारणा को सुदृढ किया होगा। राष्ट्रभक्ति के आदर्श के प्रति भगत सिंह का समर्पण और शहीदों के प्रति उसकी श्रद्धा का भाव उसके अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों से स्पष्ट होता है। वह ऐसी रचनाओं को जन-जागरण का सर्वाधिक सशक्त माध्यम मानता थे। 'विश्व प्रेम' (नवंबर 1924 में 'मतवाला' में प्रकाशित) और 'युवक' (मई 1925, मतवाला) शीर्षक के लेख राष्ट्र और मानवता के प्रेम में पगे हैं और इनमें भारतीय युवकों को जागने, खड़े होकर मातृभूमि पर न्यौछावर होने का संदेश दिया गया है।

भगत सिंह का निबंध 'पंजाबी भाषा और लिपि की समस्या' (1925) विषयक लेख राष्ट्र निर्माण में भाषा की भूमिका को रेखांकित करता है। इस निबंध में उन्होंने अन्यों के अतिरिक्त गुरु गोविंद सिंह, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, स्वामी रामतीर्थ और गुरु तेग बहादुर का नाम उनके राष्ट्रवादी संदेश के कारण अतिरिक्त श्रद्धा के साथ लिया है

उनकी रचना 'होली के दिन रक्त के छींटे' (मार्च 1926 प्रताप) में बब्बर अकालियों के बलिदान की महिमा का वर्णन है। 'काकोरी के वीरों से परिचय' (मई 1927 'किरती' और 'काकोरी के शहीदों की फाँसी के हालात' (जनवरी 1928, ('किरती') लेखों में काकोरी कांड में दोषी पाए गए नायकों के अप्रतिम गुणों का वर्णन किया गया है। भगत सिंह ने आयरलैंड के क्रांतिकारियो पर लिखी डैन ब्रीन की अमर रचना 'माई फाइट फॉर द आइरिश फ्रीडम' का हिंदी अनुवाद जन-जन तक पहुँचाने के लिए किया, नवंबर 1928 में 'चाँद' पत्रिका के 'फाँसी' विशेषांक में शहीदों की जीवन गाथाओं पर आधारित अंक की तैयारी में भी भगत सिंह ने सहयोग किया। भगत सिंह की पत्रिकाओं में प्रकाशित अन्य रचनाएँ भी देशभक्ति में डूबी हैं। इनमें से अधिकांश देश पर आत्मबलिदान करने वाले बलिदानियों को समर्पित हैं।

भगत सिंह का निबंध 'पंजाबी भाषा और लिपि की समस्या' (1925) विषयक लेख राष्ट्र निर्माण में भाषा की भूमिका को रेखांकित करता है। इस निबंध में उन्होंने अन्यों के अतिरिक्त गुरु गोविंद सिंह, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, स्वामी रामतीर्थ और गुरु तेग बहादुर का नाम उनके राष्ट्रवादी संदेश के कारण अतिरिक्त श्रद्धा के साथ लिया है।

यदि पारिवारिक पृष्ठभूमि और बलिदानियों से मिली प्रेरणा ने भगत सिंह की वैचारिक नींव को पुष्ट किया तो उनके अध्ययन ने मातृभूमि की मुक्ति के उनके विचारों को बल दिया। जैसा कि अपने आत्मकथापरक लेख 'मैं नास्तिक क्यों हूं' में उन्होंने लिखा कि काकोरी डकैती काण्ड (अगस्त 1925) ने उन्हें गहन अध्ययन की ओर प्रवृत्त किया। इन अनुभवों को आत्मसात करने कारण ही भगत सिंह अन्य क्रांतिकारियों से ऊपर दिखाई पड़ते हैं। उनके साथियों के अनुसार कुछ पुस्तकों ने उनके दृष्टिकोण और व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान किया है। जयदेव फ्रांसीसी क्रांति विषयक विक्टर ह्यूगो की रचना 'नाइनटी थ्री' के विषय में स्मरण करते हुए कहते हैं, "इस ग्रंथ ने भगत सिंह को अत्यधिक प्रेरित किया, उनके चरित्र का निर्माण किया, किस प्रकार का व्यक्ति उन्हें बनना चाहिए, क्या अच्छा है, क्या बुरा है तथा किन हालात में मनुष्य को कैसा व्यवहार करना चाहिए यह उन्होंने इससे सीखा। डैन ब्रीन कृत 'माई फाइट फॉर आइरिश फ्रीडम', जयदेव के कथनानुसार उनकी गीता थी।"[33] इस पुस्तक को जन-जन तक पहुँचाने के लिए क्रांतिकारियो ने इसका अनुवाद हिंदी और पंजाबी में किया। भगत सिंह द्वारा इसका हिंदी में किया गया अनुवाद मई 1929 में सरकार द्वारा प्रतिबंधित किया गया। द्वारका दास पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष राजाराम भगत सिंह की प्रिय पुस्तकों में अन्य रचनाओं के अतिरिक्त विनायक दामोदर सावरकर, मैजिनी, और गेरीबाल्डी की जीवनियाँ तथा अपटन सिन्क्लेयर की रचना 'द क्राई फॉर जस्टिस' को भी जोड़ते हैं।[34] उन्होंने सावरकर की पुस्तक 'वार ऑफ इंडियन इंडिपेंडेंस' को गुप्त रूप से छपवा कर प्रचारित किया।[35] पहली प्रति पुरुषोत्तम दास टंडन को भेंट की गई थी।[36]

राजाराम शास्त्री जो 1926 में लाहौर आये थे और द्वारका दास पुस्तकालय का

अध्यक्ष बने, उनके संस्मरणों के आधार पर भगत सिंह द्वारा पढ़ी जाने वाली पुस्तकों के माध्यम से तथा उनसे हुए भगत सिंह के वार्तालाप के सहारे, भगत सिंह की विचारधारा के क्रमिक विकास को अंकित किया जा सकता है। जैसा कि शास्त्री जी याद करते हैं कि पहले भगत सिंह को क्रांतिकारियों की जीवनियाँ पढ़ने की सनक सी थी। अंतरराष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलनों के अध्ययन के माध्यम से वे अराजकतावाद के संपर्क में आए। अराजकतावादी, मत में आत्म बलिदान के साहसिक कार्यों के माध्यम से समाज को जगाने और तानाशाही शासकों को भयमीत करने की वकालत करने के कारण उन्हें आकर्षित करते थे। इस प्रकार अराजकतावाद उनके बलिदान के आदर्श के निकट पड़ता था। अराजकतावादी न्यायालयों में हुई बहसों को अपनी विचारधारा के प्रचार प्रसार का माध्यम बनाते थे। फ्रांस के अराजकतावादी ऑगस्ट वेला (1861-1894) का भगत सिंह के मस्तिष्क पर स्थायी प्रभाव पड़ा। शास्त्री ने भगत सिंह की वेला से उसकी पुस्तक 'एनार्किज्म एंड अदर एस्सेज' के माध्यम से हुई पहली बौद्धिक मुलाकात का विस्तार से वर्णन किया है। वेला ने फ्रांस की संसद के डिप्युटीस के चौंबर में 8 दिसंबर 1893 को बम फेंका था।[37] जब न्यायालय में इसके विषय में उससे पूछा गया तो उसने लंबा बयान दिया और साथ ही कहा कि वह अपनी रक्षा के लिए वकील नहीं चाहता। भगत सिंह ने वेला के वक्तव्य को कंठस्थ कर लिया था। 8 अप्रैल 1929 को भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त द्वारा सेंट्रल असेंबली में फेंके गए लाल पर्चों पर वेला का प्रसिद्ध वाक्य "बहरों को सुनाने के लिए धमाकों की जरूरत है" अंकित था। भगत सिंह पर वेला का प्रभाव उनके दूसरे मुकदमे के दौरान दिखाई गई आश्चर्यजनक मस्ती और फाँसी के फंदे के निकट भी मैजिस्ट्रेट से हुए बेखौफ और बेबाक संवाद में लक्षित होता है। अन्य अराजकतावादी जिनका भगत सिंह पर गहरा प्रभाव पड़ा, वे थे बाकुनिन और प्रिंस पीटर क्रोपाट्किन। बाकुनिन की पुस्तक 'गॉड एंड द स्टेट' भगत सिंह को बहुत प्रिय थी। इस पुस्तक ने भगत सिंह के नास्तिकवाद को तार्किक आधार प्रदान किया जो कि स्वयं भगत सिंह में विद्यमान गहन मानवतावाद की ही अभिव्यक्ति था। सोहन सिंह जोश, जो कि 1928 में भगत सिंह के संपर्क में आए, याद करते हैं कि भगत सिंह प्राय: प्रिंस क्रोपाट्किन का यह कथन उद्धृत करते थे। कोई एक काम कुछ ही दिनों में वह काम कर देता है जो कि हजारों पर्चे नहीं कर पाते- हाथ में मशाल अथवा डायनामाइट लेकर विद्रोह करने वाला एक व्यक्ति पूरी दुनियाँ को राह दिखा सकता है।[38] राष्ट्रवादी नेतृत्व द्वारा अत्यधिक दबाब डाले जाने पर भी भगत सिंह द्वारा आत्मरक्षा के लिए दया की अपील न करना भी इनपर पड़े अराजकतावादी प्रभाव और बलिदान के आदर्श में उनकी अडिंग आस्था को दर्शाता है।

अराजकतावाद से भगत सिंह के अध्ययन का केंद्र समाजवाद और मार्क्सवाद की तरफ चला गया। उनके अपने शब्दों में, उन्होंने, "कुछ मार्क्स को पढ़ा, जो साम्यवाद के जनक हैं तथा लेनिन, ट्राटस्की आदि अन्य लोगों को खूब पढ़ा जिन्होंने अपने देश में सफल क्रांति की थी।"[39] रूस की साम्राज्यवाद विरोधी छवि एवं एक आदर्शवादी समाज की अपरीक्षित स्वप्न, दूर से लोगों में रोमांटिक आकर्षण भरता था। उन्नीस वर्ष के युवा भगत सिंह में भी उस मार्क्सवाद और लेनिनवाद के प्रति रोमांटिक जिज्ञासा, उत्पन्न हुई जिसका दावा था कि उसने समाजवादी रूस में सपनों के उस समाज का निर्माण कर दिया है जिसमें शोषण और विषमता नहीं है। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि रूसी क्रांति का प्रभाव केवल युवा भगत सिंह पर ही नहीं पड़ा था बल्कि लगभग पूरा कांग्रेसी नेतृत्व इसके मोहजाल में फँस चुका था।

भगत सिंह द्वारा अपने अध्ययन को समाजवाद की ओर ले जाने का एक अन्य कारण काकोरी कांड के बाद के प्रभावों में निहित है। कलोरी केस की गिरफ्तारियों के बाद 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' (एच. आर. ए.) पूर्णतया समाप्त होने को थी और उसका पुनर्गठन आवश्यक था। भगत सिंह और उनके बचे साथियों पर क्रांतिकारी दल को बचाने और उसे पुनर्गठित करने का दायित्व आ गया था। वे अनुभव कर रहे थे कि क्रांतिकारी दल के उद्देश्यों और क्रियाप्रणाली को बदलने की भी आवश्यकता है। पुलिस की कठोर कार्रवाई और उसके परिणामस्वरूप हुई सजाओं से गुप्त क्रांतिकारी गतिविधियों की कमजोरी सामने आ चुकी थी। पूर्व में क्रांतिकारी दल की कार्यप्रणाली और उसके परिणाम, आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए डाके डालना, लोगों के साथ जनसंपर्क के अभाव में जन-समर्थन न जुटा पाना, आदि ने भगत सिंह को पुन: विचार के लिए प्रेरित किया। गांधी की अहिंसावादी आंदोलनात्मक राजनीति के विरुद्ध खड़े क्रांतिकारी दल को वैकल्पिक दार्शनिक वैचारिक आधार की अत्यधिक आवश्यकता थी। इस संदर्भ में समाजवाद, साम्राज्यवाद विरोधी था और सामाजिक-आर्थिक मुक्ति का आदर्श लिए था, एक ऐसी विचारधारा प्रदान करता था जिसकी तलाश भगत सिंह को थी। उस समय रूस में बोल्शेविक प्रचार तंत्र द्वारा समाजवादी प्रयोग की सफलता का डंका पीटा जा रहा था जिससे क्रांतिकारी उस ओर आकर्षित हुए। इसका प्रतिछाया सितंबर 1928 में दिल्ली में हुई एच. आर. ए. की बैठक में, भगत सिंह द्वारा पार्टी के नाम में समाजवादी शब्द जोड़ने का हठ करने के

भगत सिंह द्वारा अपने अध्ययन को समाजवाद की ओर ले जाने का एक अन्य कारण काकोरी कांड के बाद के प्रभावों में निहित है। कलोरी केस की गिरफ्तारियों के बाद 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' पूर्णतया समाप्त होने को थी और उसका पुनर्गठन आवश्यक था। भगत सिंह और उनके बचे साथियों पर क्रांतिकारी दल को बचाने और उसे पुनर्गठित करने का दायित्व आ गया था। वे अनुभव कर रहे थे कि क्रांतिकारी दल के उद्देश्यों और क्रियाप्रणाली को बदलने की भी आवश्यकता है

रूप में सामने आई और इसका नया नाम 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन आर्मी' या प्रस्तावित 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' की जगह 'हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' (एच. एस. आर. ए.) के रूप में सामने आया। पार्टी के संविधान में अन्य कोई भी बदलाव नहीं किया गया।

यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि भगत सिंह को 1929 में बंदी बनाए जाने से पूर्व उनकी किसी भी रचना में समाजवाद अथवा मार्क्सवाद का उल्लेख नहीं है। 6 जून 1929 को सेशन कोर्ट में बटुकेश्वर दत्त और भगत सिंह द्वारा दिए गए सामूहिक बयान में पहली बार समाजवाद के तत्व खोजे जा सकते हैं। इस बयान में उनकी समाजवादी समाज की परिकल्पना का विस्तार दिखाई पड़ता है।

"वर्तमान समाज व्यवस्था जो कि स्पष्ट रूप से अन्याय पर आधारित है, अवश्य बदली जानी चाहिए। उत्पादक अथवा मजदूर, समाज का आवश्यक अंग होते हुए भी अपने श्रम के फल से वंचित और मूलभूत अधिकारों से रहित है। इस सभ्यता का संपूर्ण ढाँचा यदि समय पर संभाला नहीं गया तो भरभरा कर ढह जाएगा। इसलिए मूलगामी परिवर्तन की आवश्यकता है। इसलिए जो इसे समझते हैं उनका यह दायित्व है कि वे समाजवादी समाज की रचना करें। जब तक ऐसा नहीं किया जाता और मनुष्य द्वारा मनुष्य का तथा राष्ट्रों द्वारा दूसरे राष्ट्रों का शोषण समाप्त नहीं होता तब तक मानवीय पीड़ा और संहार नहीं रुकेगा जिसका खतरा आज बना हुआ है। क्रांति से हमारा अभिप्राय अंततः ऐसे समाज की स्थापना से है जो इस प्रकार के बिखरावों से भयभीत न हो और जिसमे श्रमिक वर्ग (सर्वहारा) की प्रभुसत्ता को स्वीकृति मिले तथा एक विश्वसंघ बने जो कि मनुष्य मात्र को पूँजीवाद और साम्राज्यवादी युद्धों की पीड़ा से मुक्त कर सके।"

"यही हमारा आदर्श है, इस विचारधारा से प्रेरित होकर हमने स्पष्ट और समुचित चेतावनी दे दी है।"[40]

लाहौर षड्यंत्र कांड में भगत सिंह और उनके साथियों पर जब मुकदमा चल रहा था तब 21 जनवरी 1930 को उन्होंने लेनिन की मृत्यु पर तार देकर घोषित किया था, "हम अंतरराष्ट्रीय श्रमिक आंदोलन के साथ अपनी आवाज बुलंद कर रहे हैं। सर्वहारा की विजय होगी, पूँजीवाद की पराजय होगी। साम्राज्यवाद मुर्दाबाद!"[41]

वर्तमान समाज व्यवस्था जो कि स्पष्ट रूप से अन्याय पर आधारित है, अवश्य बदली जानी चाहिए। उत्पादक अथवा मजदूर, समाज का आवश्यक अंग होते हुए भी अपने श्रम के फल से वंचित और मूलभूत अधिकारों से रहित है। इस सभ्यता का संपूर्ण ढाँचा यदि समय पर संभाला नहीं गया तो भरभरा कर ढह जाएगा। इसलिए मूलगामी परिवर्तन की आवश्यकता है। इसलिए जो इसे समझते हैं उनका यह दायित्व है कि वे समाजवादी समाज की रचना करें। जब तक ऐसा नहीं किया जाता और मनुष्य द्वारा मनुष्य का तथा राष्ट्रों द्वारा दूसरे राष्ट्रों का शोषण समाप्त नहीं होता तब तक मानवीय पीड़ा और संहार नहीं रुकेगा जिसका खतरा आज बना हुआ है

भगत सिंह द्वारा रचित बताई जाने वाली और प्रायः उद्धृत की जानेवाली दो रचनाएँ हैं जिनमें समाज की मार्क्सवादी लेनिनवादी व्यवस्था और राजनीति का उल्लेख है, वे हैं- 'इंट्रोडक्शन टु ड्रीमलैंड' (स्वप्नलोक की भूमिका) तथा 'मेसेज टु द पोलिटिकल वर्कर्स' (राजनीतिक कार्यकर्ताओं के लिए संदेश)। विश्वास किया जाता है कि यह दोनों रचनाएँ भगत सिंह ने अपने जीवन के कुछ अंतिम महीनों में 15 जनवरी 1931 और दो फरवरी 1931 को क्रमशः लिखी थीं। इन रचनाओं में भगत सिंह, हिंसापरक साधनों की वकालत की अपेक्षा समाज को समाजवादी व्यवस्था के अनुरूप जनता के प्रयासों से निर्मित करने वाले राजनीतिक चिंतक के रूप में सामने आते हैं। क्रांति और तत्पश्चात् समाज के पुनर्निर्माण के लिए वे रूस की बोल्शेविक क्रांति को रोल मॉडल की तरह देखते हैं। लाला राम शरण दास द्वारा रचित 'इंट्रोडक्शन टु ड्रीमलैंड' की भूमिका में भगत सिंह लिखते हैं, "हम क्रांतिकारी राजसत्ता को हस्तगत करने का प्रयास कर रहे हैं ताकि क्रांतिकारी सरकार की स्थापना कर सारे संसाधनों को जन शिक्षा पर लगा सकें जैसा कि रूस में हुआ है। सत्तासीन होने के पश्चात् रचनात्मक कार्यों के लिए शांतिपूर्ण उपाय किए जाएंगे तथा बाधाओं को कुचलने के लिए बल प्रयोग किया जाएगा।"[42] परंतु इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि 'इंट्रोडक्शन टु ड्रीमलैंड' पुस्तक अपने प्रकाशन के तीन दशक पश्चात् प्रकाश में आई जिससे इसकी प्रामाणिकता पर भी प्रश्न-चिह्न लगता है।

'मेसेज टु पोलिटिकल वर्कर्स' नामक लेख के अनेक संस्करण प्रकाश में आए हैं और इसे प्रचारित करने वाले इसका कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाए हैं कि मूल संस्करण किसे माना जाए। यहाँ तक कि क्रांतिकारी आंदोलन से जुड़े मन्मथनाथ गुप्त जैसे लोगों ने भी इसकी प्रामाणिकता पर प्रश्न उठाए हैं। भगत सिंह द्वारा लिखी गई बताई जाने वाली इस रचना में क्रांतिकारी दल का लक्ष्य पूर्ण आजादी घोषित किया गया है जिसका अर्थ केवल यह नहीं है कि ब्रिटिश सत्ता, भारतीयों को हस्तांतरित कर दी जाए बल्कि सत्ता का हस्तांतरण समाजवादी समाज के लिए प्रतिबद्ध हाथों में होना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि किसान-मजदूरों को संगठित किया जाए। इसी दस्तावेज में भगत सिंह हिंसापूर्ण उपायों की राजनीति से अपने को दूर करते हुए कहते हैं, "मैं अपनी पूरी शक्ति लगाकर यह घोषित करना चाहता हूँ कि न तो मैं आतंकवादी हूँ और न ही पहले कभी आतंकवादी था। सिवाए अपने क्रांतिकारी जीवन के प्रारंभिक दौर को छोड़कर। मैं पूरी तरह आश्वस्त हूँ कि इन उपायों से हम कुछ भी हासिल नहीं कर सकते। कोई भी इस बात का अंदाजा 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एशोसिएशन' के इतिहास से लगा सकता है।"[43] परंतु यह निबंध जिसके विभिन्न रूप हैं, समय-समय पर प्रचारित किए गए, प्रामाणिकता की दृष्टि से संदिग्ध है।

20 मार्च 1931 को ब्रिटिश अधिकारियों के नाम लिखे अपने अंतिम पत्र में भगत

सिंह ने जोर देकर कहा कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष ही शोषण और असमानता के विरुद्ध संघर्ष भी है।[44] जब तक श्रमशील भारतीयों का यह शोषण जारी रहेगा, तब तक यह संघर्ष भी चलता रहेगा और इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि शोषक भारतीय हैं अथवा ब्रिटिश शासन। "यह युद्ध नए जोश, और अधिक दुस्साहस और अटल निश्चय के साथ तब तक लड़ा जाएगा जब तक समाजवादी गणतंत्र की स्थापना नहीं हो जाती तथा वर्तमान समाज व्यवस्था को एक नई समाज-व्यवस्था में नहीं बदल दिया जाता जो कि सामाजिक संपन्नता पर आधारित होगी और हर प्रकार के शोषण से मुक्त कर मानवता को स्थाई और वास्तविक शांति के युग में ले जाएगी।"[45]

ऊपर प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों के साक्ष्य से इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि अपनी वैचारिक यात्रा के अंतिम पड़ाव तक आते-आते भगत सिंह का रुझान समाजवाद की ओर हो चला था। परंतु यह भी नहीं कहा जा सकता कि ऐसा करते समय भगत सिंह ने अपने उन सभी पूर्व प्रभावों अथवा रुझानों को त्याग दिया था जिनसे वे भगत सिंह बने थे। मातृभूमि के लिए सर्वोच्च बलिदान का उनका संकल्प अंतिम क्षण तल अक्षुण्ण बना रहा। आसफ अली जो कि असेंबली बम केस में भगत सिंह के वकील थे और जिन्होंने सेशनकोर्ट में भगत सिंह का प्रसिद्ध बयान पढ़ा था, उन्होंने बाद में स्मरण करते हुए कहा कि भगत सिंह साम्यवाद के प्रति आसक्त नहीं हुए थे।[46] यशपाल ने भी इस बात पर संदेह व्यक्त किया है कि यदि भगत सिंह जीवित रहते तो वह साम्यवादी दल से सहमत होते।[47] क्रांतिकारी दल में भगत सिंह के सहयोगी रहे और बाद में साम्यवादी दल के महासचिव पद पर सुशोभित होने वाले अजय घोष का कथन सर्वाधिक महत्व का है जिसमें वह 1945 में कहते हैं, "हम साम्यवादियों को क्रांतिकारी नहीं मानते थे - हमारे लिए क्रांति का एकमात्र अर्थ था सशस्त्र क्रांति।"[48] भगत सिंह के विषय में अजय घोष का कथन प्रसिद्ध है कि, "यह कहना अतिशयोक्ति होगी कि वह [भगत सिंह] मार्क्सवादी हो गए थे।"[49]

भगत सिंह की जेल डायरी को प्राय: इस बात के प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किया जाता है कि वह मार्क्सवादी हो गए थे। डायरी में उन पुस्तकों से विस्तृत उद्धरण लिए गए हैं जिनका अध्ययन उन्होंने जेल में रहते हुए किया। ये उद्धरण मार्क्स और लेनिन सहित अन्य अनेक लेखकों के लिए हैं। ए. जी. नूरानी का जेल डायरी के विषय में यह कथन सत्य के अधिक निकट प्रतीत होता है कि, "यह डायरी उनके व्यापक अध्ययन और सतत सीखते रहने की इच्छा का प्रमाण है। वे किसी नेता के अंध अनुयायी नहीं थे और न ही किसी विचारधारा का तर्कातीत समर्थन करने वाले थे। यह कहना संभव नहीं है कि उनका अध्ययन और चिंतन उन्हें भविष्य में किस दिशा में ले जाता, यदि वे जीवित रहते। यह नोटबुक अपने उद्धरणों के चुनाव में अत्यधिक उदार है।"[50]

भगत सिंह की नास्तिकता को भी कभी-कभी उनके मार्क्सवादी हो जाने के प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उनका प्रसिद्ध आलेख 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' इस बात का कोई प्रमाण नहीं देता कि उनकी नास्तिकता का मार्क्सवाद से कुछ भी संबंध था। अपने इस विस्तृत निबंध में भगत सिंह ने अपने नेशनल कॉलेज के 1921 के दिनों से लेकर 1926 तक के समय में पक्के अनीश्वरवादी बनने की प्रक्रिया का वर्णन किया है। भगत सिंह का मार्क्सवाद का अध्ययन बाद में प्रारंभ हुआ। उनका नास्तिकवाद उसके संवेदनशील मन, प्रगाढ़ मानववाद और तर्कशील चिंतन प्रणाली की उपज था। इसे किसी भी दार्शनिक अथवा वैचारिक प्रतिबद्धता से नहीं जोड़ा जा सकता। उन्होने स्वयं स्वीकार किया कि, "मैं प्रारंभ में ही स्वीकार करता हूँ कि मुझे इस विषय में अधिक अध्ययन का अवसर प्राप्त नहीं हुआ है। भारतीय दर्शन को पढ़ने की मेरी तीव्र इच्छा थी परंतु मुझे इसका कोई अवसर नहीं मिल सका।"[51] भगत सिंह ने अपने चारों ओर के यथार्थ को मानवता के कष्टों के रूप में देखा। "यह दुनिया दुखों और कष्टों से भरी है, अनगिनत त्रासदियों का चिरकालीन मिश्रण है। एक भी व्यक्ति पूरी तरह संतुष्ट नहीं है।"[52] सर्वव्याप्त असमानता, शोषण और निर्धनता ने उन्हें सर्वज्ञानी, सर्वशक्तिमान ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगाने के लिए विवश किया जिसने न जाने क्यों इस दुखमय दुनिया का सृजन किया है। आगे चलकर, अपने अध्ययन के परिणामस्वरूप वह एक न्यायपूर्ण, समतामूलक और निर्धनता रहित समाज के विषय में सोचने लगे और उसके साथ ही स्वाधीनता के प्रति उनकी ललक ने स्वतंत्र समाजवादी भारत का विचार दिया।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि भगतसिंह की विचारधारा को मार्क्सवाद, अराजकतावाद, अथवा प्रारंभिक क्रांतिकारियों के रास्ते पर चलने जैसे किसी एक साँचे में पूरी तरह बाँधा नहीं जा सकता। यह बात भी हमें नहीं भूलनी चाहिए कि अभी वह चौबीस वर्ष के भी नहीं थे जब वे शहीद हो गये। वे निरंतर विकास की प्रक्रिया में थे और अपने छोटे से क्रांतिकारी जीवन में वे कई वैचारिक बदलावों से गुजरे थे। इस बात का अनुमान लगाने का प्रयास मूर्खतापूर्ण ही कहा जाएगा कि यदि वह इतनी कम आयु में ही मृत्यु को प्राप्त न होते तो आगे चलकर कौन-सा मार्ग अथवा विचारधारा अपनाते। साथ ही अपनी वैचारिक विकास यात्रा में उन्होने उन सभी तत्वों को सँजो कर

भगत सिंह की नास्तिकता को भी कभी-कभी उनके मार्क्सवादी हो जाने के प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उनका प्रसिद्ध आलेख 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' इस बात का कोई प्रमाण नहीं देता कि उनकी नास्तिकता का मार्क्सवाद से कुछ भी संबंध था। अपने इस विस्तृत निबंध में भगत सिंह ने अपने नेशनल कॉलेज के 1921 के दिनों से लेकर 1926 तक के समय में पक्के अनीश्वरवादी बनने की प्रक्रिया का वर्णन किया है। भगत सिंह का मार्क्सवाद का अध्ययन बाद में प्रारंभ हुआ। उनका नास्तिकवाद उसके संवेदनशील मन, प्रगाढ़ मानववाद और तर्कशील चिंतन प्रणाली की उपज था

रखा जो कि उनके अंतिम लक्ष्य, मातृभूमि की आजादी के लिए उपयोगी प्रतीत हुए। वह ऐसे किसी भी मार्ग अथवा विचारधारा को अपनाने के लिए तत्पर थे जिससे देश की स्वतंत्रता निकटतर आती हो। भगत सिंह की विचारधारा धरातल पारम्परिक एवं आधुनिक, भारतीय एवं विदेशी अनेक स्रोतों पर आधारित था और यह तथ्य भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त द्वारा सेशन कोर्ट (दिल्ली) के जज के सम्मुख दिए उनके बयान के इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि, "भारत में जो नया आंदोलन खड़ा हुआ है और जिस प्रभात की चेतावनी हमने दी है उसकी प्रेरणा गुरु गोविंद सिंह और शिवाजी, कमाल पाशा और रजा खान, वाशिंगटन और गेरेबाल्डी, लफायत और लेनिन से प्राप्त हुई है।"[53] देशभक्ति उनकी विचारधारा का सार है जिसमे अन्य सारे प्रभाव समाहित हो जाते हैं। यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि अपने बचपन से अंतिम समय तक उन्हें शहादत की परंपरा में दृढ़ आस्था रही जिसके माध्यम से सोए हुए भारतीयों को विशेषकर युवा वर्ग को जगाया जा सकता है। उनका नाम 'शहीद-ए-आजम' का पर्याय है क्योंकि अपना पूरा जीवन शहादत की साध ना में लगा दिया और अपना जीवन बचाने के समस्त प्रयत्नों को विफल किया। इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं हो सकता कि उनकी विचार-प्रक्रिया में यदि कोई निरंतरता थी तो वह थी प्रखर देशभक्ति; कोई अटल स्वप्न था तो वह था मातृभूमि की स्वाधीनता; और अगर कोई एक जुनून था जो इनके छोटे से जीवन पर छाया रहा था, तो वह था शहादत को गले लगाना।

संदर्भ

1. एस. इरफान हबीब, *इंकिलाब: भगत सिंह ऑन रेलिजन ऐंड रिवोल्यूशन*, योदा प्रेस ऐंड सेज, नई दिल्ली, 2018, पृ. ix, xii.
2. *शहीद-ए.आजम भगत सिंह: विचार और संघर्ष*, 2003, पृ.11
3. अशोक धावले, *शहीद भगत सिंह: ऐन इम्मॉर्टल रिवोल्यूशनरी*, सीपीआई (एम) का प्रकाशन, 2007, पृ. 44
4. वही
5. लिबरेशन, अक्टूबर 2006
6. चमन लाल, द *जेल नोटबुक ऐंड अदर राइटिंग्स*, 2007, पृ. 21
7. फिलहाल (पटना), मई-जून 2007, पृ. 17
8. मुंबई विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित इस संगोष्ठी की कार्यवाहियों को एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया था। इसमें कुल मिलाकर 28 शोधपत्र शामिल किए गए थे; जोस जॉर्ज, मनोज कुमार, एवं अविनाश खंडारे (सं); *रीथिंकिंग रेडिकलिज्म इन इंडियन सोसायटी: भगत सिंह ऐंड बियॉन्ड*, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, 2009
9. *पीपल्स डेमोक्रेसी*, 15 अप्रैल 2007
10. वही
11. नौजवान भारत सभा, दिशा छात्र संगठन, बिदुल मजदूर दस्ता, क्रांतिकारी नवजागरण के तीन वर्ष (23 मार्च-28 सितंबर 2008) एन.डी.
12. वही, पृ. 20
13. *विचारों की सान पर*, 2006, पृ.15.
14. *कम्युनिस्ट चौलेंज इम्पीरियलिज्म फ्रॉम* द डॉक, इंट्रोडक्ट्री बाय मुजफ्फर अहमद, 1967, पृ. 270-71
15. पी.सी. जोशी, *रजनी पामे* दत्त ऐंड *इंडियन कम्युनिस्ट्स*, [उद्धृत: गार्गी चक्रवर्ती, पी.सी. जोशी; अ बायोग्राफी, में] 2007, पृ. 12
16. बी.टी. रणदिवे'ज फोरवर्ड टु शिव वर्मा, *सेलेक्टेड राइटिंग्स ऑफ शहीद भगत सिंह*, 1996, पृ.. 9.
17. पी.एम.एस. ग्रेवाल, *भगत सिंह: लिबरेशंस ब्लेजिंग स्टार*, 2007, पृ. 57.
18. मोहित सेन, *अ ट्रेवलर ऐंड द रोड*, 2003, पृ. 138.
19. गोपाल ठाकुर, *भगत सिंह: द मैन ऐंड हिज आइडियाज*, 1953, पृ. 42.
20. शिव वर्मा, *भगत सिंह: द मैन ऐंड हिज आइडियाज*, 1953.
21. देवेंद्र स्वरूप, *डिड मॉस्को प्ले फ्रॉड ऑन मार्क्स*
22. वही, पृ. 71-72.
23. मोहित सेन, यथा उद्धृत, पृ. 154
24. बिपिन चंद्र, '*द आइडियोलॉजिकल डेवलपमेंट ऑफ द रिवोल्यूशनरी टेररिस्ट्स इन नॉर्थ इंडिया इन 1920ज*' इन बी.आर. केनेडा, सं., सोशलिज्म इन इंडिया, 1972, पृ. 163-189.
25. बिपिन चंद्र'ज इंट्रोडक्शन टु *भगत सिंह: व्हाई आएम ऐन एथीस्ट ऐंड इंट्रोडक्शन* टु ड्रीमलैंड, 1979
26. ए.बी. बर्धन, *भगत सिंह: पेजेज फ्रॉम द लाइफ ऑफ अ मार्टायर*, 1984, पृ. 27.
27. प्रेफेस टु शिव वर्मा, सं., *सेलेक्टेड राइटिंग्स ऑफ भगत सिंह*, 1996, पृ. 14-15
28. शिव वर्मा, सं., सेलेक्टेड राइटिंग्स ऑफ भगत सिंह, 1996, पृ. 42.
29. वीरेंद्र सिंधू (सं).; *सरदार भगत सिंह: पत्र और दस्तावेज*, 1975, पृ. 18.
30. शिव वर्मा (सं.), *सेलेक्टेड राइटिंग्स ऑफ भगत सिंह*, 1996, पृ. 125
31. वही, उद्धृत: मैनिफेस्टो ऑफ द हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन, पृ. 154.
32. राजा राम शास्त्री, *अमर शहीदों के संस्मरण*, 1981, पृ. 97
33. वीरेंद्र सिंधू, *मेरे क्रांतिकारी साथी*, 1977, पृ.. 22-24.
34. राजाराम शास्त्री, *अमर शहीदों के संस्मरण*, 1981, पृ. 97-98.
35. वही, पृ. 89-90.
36. वही
37. वही, पृ. 99-100
38. सोहन सिंह जोश, *माई ट्रीस्ट विद सेकुलरिज्म*, 1991, पृ. 133.
39. शिव वर्मा, सं., *सेलेक्टेड राइटिंग्स ऑफ भगत सिंह*, 1996, पृ. 123.
40. वही, पृ. 69-70.
41. वही, पृ. 77.
42. वही, पृ. 108-109.
43. वही, पृ. 120.
44. भगत सिंह पर *भविष्य* के विशेषांक में प्रकाशित, 9 अप्रैल 1931
45. शिव वर्मा, पूर्वत: उद्धृत, पृ. 133
46. आसफ अली, '*ऐन आउटस्टैंडिंग मेकर ऑफ हिस्ट्री*', *कॉमनवेल्थ* (पुणे) में 23 मार्च 1949 को प्रकाशित। यह लेख एम.एम. जुनेजा द्वारा संपादित सेलेक्टेड कलेक्शंस ऑन भगत सिंह, 2007, में पुन: प्रकाशित हुआ, पृ. 125-132
47. यशपाल, *सिंहावलोकन*, 2005, पृ. 392
48. अजय घोष, *भगत सिंह ऐंड हिज कॉमरेड्स*, 1979, पृ. 22
49. वही, पृ. 28
50. ए.जी. नूरानी, द *ट्रायल ऑफ भगत सिंह: पॉलिटिक्स ऑफ जस्टिस*, 2005, पृ. xv.
51. शिव वर्मा, पूर्वत: उद्धृत, पृ. 127.
52. वही
53. वही, पृ. 68.

डॉ. चंदन कुमार

आजादी के संघर्ष में सशस्त्र क्रांति की भूमिका

भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कई धाराओं में चल रहा था। मुख्यत: इसकी दो धाराएँ थीं। एक अहिंसक आंदोलन की और दूसरी सशस्त्र संघर्ष की। एक विवरण सशस्त्र संघर्ष का

क्रांतिकारी वीरता की गतिविधियाँ राष्ट्रवाद के विकास के उप-उत्पाद के रूप में शुरू हुई थीं। जिसका पहला चरण स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन के परिणामस्वरूप प्रारंभ हुआ और 1917 तक जारी रहा और दूसरा चरण असहयोग आंदोलन के परिणामस्वरूप शुरू हुआ। असहयोग आंदोलन की अचानक वापसी ने कई युवाओं का मोह भंग किया और उन्होंने राष्ट्रवादी नेतृत्व की मूल रणनीति और अहिंसा पर उनके जोर पर सवाल उठाना शुरू कर दिया और विकल्पों की तलाश शुरू कर दी।[1] लेकिन चूँकि ये युवा राष्ट्रवादी स्वराजवादियों के धैर्यवान, नाटकीय, रचनात्मक कार्यों के प्रति आकर्षित नहीं थे, इसलिए वे इस विचार की ओर आकर्षित हुए कि केवल सशस्त्र क्रांति और हिंसक तरीके से ही भारत को मुक्त किया जा सकता है।

ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता के संघर्ष में भारतीय सशस्त्र क्रांतिकारी गतिविधि के योगदान को ठीक से प्रलेखित या प्रकट नहीं किया गया है। आम जनता को इसकी सीमित जानकारी है और राष्ट्र के नेताओं ने हमारे इतिहास के इस महत्वपूर्ण अध्याय में सशस्त्र बलों द्वारा निभाई गई भूमिका को सीमित स्वरूपों में सराहना की है। स्वतंत्रता आंदोलन में सशस्त्र बलों के योगदान से राष्ट्र को परिचित कराने की आवश्यकता है, अत: यह लेख स्वतंत्रता आंदोलन में क्रांतिकारी गतिविधि के योगदान से राष्ट्र को परिचित कराने का प्रयास करता है।

बीसवीं शताब्दी का तीसरा दशक आधुनिक भारतीय इतिहास में एक से अधिक मायनों में ऐतिहासिक है। जहाँ एक ओर, इस अवधि ने राष्ट्रीय आंदोलन में भारतीय जनता के प्रवेश को चिह्नित किया, वहीं दूसरी ओर, विविध राजनीतिक धारणाओं की उत्पत्ति के कारण हुई, क्योंकि उन्होंने इसके लिए सकारात्मक या नकारात्मक प्रतिक्रिया को मूर्त रूप दिया।[2] क्रांतिकारी नीतियों के लगभग सभी प्रमुख नेता असहयोग आंदोलन में उत्साही भागीदार थे और इसमें जोगेश चंद्र चटर्जी, सूर्य सेन, भगत सिंह, सुखदेव, चंद्रशेखर आजाद, शिव वर्मा, भगवतीचरण वोहरा, जयदेव कपूर और जतिन दास शामिल थे। इस अवधि के दौरान क्रांतिकारी समूहों के दो अलग-अलग समूह उभरे- एक पंजाब, संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) और बिहार में और दूसरा बंगाल में।

भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु पर लाहौर षड्यंत्र मामले में मुकदमा चला था। कई अन्य क्रांतिकारियों पर अन्य मामलों में मुकदमा चलाया गया था। जेल में, इन क्रांतिकारियों ने उपवास के माध्यम से भयानक परिस्थितियों का विरोध किया, और राजनीतिक कैदियों के रूप में सम्मानजनक और सभ्य व्यवहार की माँग की। जतिन दास अपने अनशन के 64वें दिन पहले शहीद बने। चंद्रशेखर आजाद दिसंबर 1929 में दिल्ली के पास वायसराय इरविन की ट्रेन को उड़ाने की कोशिश में शामिल थे। 1930 के दौरान पंजाब और संयुक्त प्रांत के कस्बों में हिंसक कार्रवाइयों की एकशृंखला आरंभ हुई थी और अकेले पंजाब में 1930 में 26 घटनाएँ हुई थीं। फरवरी 1931 में इलाहाबाद के एक पार्क में पुलिस मुठभेड़ में आजाद की मृत्यु हो गई और भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को 23 मार्च, 1931 को फांसी दी गई।[3]

राजा राम मोहन राय, बंकिम चंद्र चटर्जी, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद सरस्वती जैसी प्रमुख हस्तियों ने अपने लेखन और भाषणों के माध्यम से राष्ट्रीय जागृति के एक नए युग की शुरुआत की। उन्होंने युवाओं से अपील की और कहा, "हमारा देश अब लोहे की मांसपेशियाँ और स्टील की नसें को चाहता है"।[4] रामकृष्ण

मिशन ने हालांकि, राजनीति से परहेज किया, लेकिन खुद को वर्तमान से पूरी तरह से अलग नहीं रख सका। मिशन के कई स्वामी कलकत्ता की अनुशीलन समिति (एक गुप्त क्रांतिकारी संगठन) के केंद्र में जाते थे और युवाओं को मार्गदर्शन देते थे।[5] स्वामी विवेकानंद के कार्य को श्रीमती एनी बेसेंट के अधीन थियोसोफिकल सोसाइटी द्वारा आगे बढ़ाया गया। जिन्होंने खुले तौर पर पश्चिम की सभ्यता कि जगह हिंदू प्रणाली की श्रेष्ठता में अपने विश्वास की घोषणा की।[6]

सूर्य सेन और चटगाँव शस्त्रागार छापा (अप्रैल 1930)

सूर्य सेन ने असहयोग आंदोलन में भाग लिया था और चटगाँव के राष्ट्रीय विद्यालय में शिक्षक थे। उन्हें क्रांतिकारी गतिविधि के लिए 1926 से 1928 तक कैद किया गया था और बाद में भी उनका कांग्रेस में काम करना जारी रहा था। वह चटगाँव जिला कांग्रेस कमेटी के सचिव थे और वह कहते थे कि "मानवतावाद एक क्रांतिकारी का एक विशेष गुण है"।[7]

सूर्य सेन ने अपने सहयोगियों अनंत सिंह, गणेश घोष और लोकनाथ बाउल के साथ एक सशस्त्र विद्रोह आयोजित करने का फैसला किया, जिसका ध्येय यह दिखाना था कि शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य की सशस्त्र शक्ति को चुनौती देना संभव था। उन्होंने चटगाँव में दो मुख्य शस्त्रागारों पर कब्जा करने की योजना बनाई थी ताकि टेलीफोन और टेलीग्राफ लाइनों को नष्ट करने और चटगाँव के रेलवे लिंक को बंगाल के बाकी हिस्सों के साथ स्थानांतरित करने के लिए क्रांतिकारियों को हथियारों की आपूर्ति की जा सके। यह छापेमारी अप्रैल 1930 में की गई थी और इसमें इंडियन रिपब्लिकन आर्मी-चटगाँव शाखा के बैनर तले 65 कार्यकर्ता शामिल थे। छापा काफी सफल रहा, सेन ने राष्ट्रीय ध्वज फहराया, सलामी ली और एक अनंतिम क्रांतिकारी सरकार की घोषणा की। बाद में, वे पड़ोसी गाँवों में चले गए और सरकारी ठिकानों पर छापा मारा। सूर्य सेन को फरवरी 1933 में गिरफ्तार किया गया था और जनवरी 1934 में फाँसी दे दी गई थी, लेकिन चटगाँव छापे ने क्रांतिकारी विचारधारा वाले युवाओं की कल्पना को एक नई दिशा दी।[8]

बंगाल में क्रांतिकारी आंदोलन का नया चरण

सूर्य सेन के साथ बड़े पैमाने पर युवतियों ने भी भागीदारी की थी। इस चरण के दौरान बंगाल में प्रमुख महिला क्रांतिकारियों में प्रीतिलता वाडेदार शामिल थीं, जो एक छापे के दौरान मर गईं; कल्पना दत्त जिन्हें सूर्य सेन के साथ गिरफ्तार किया गया और मुकदमा चलाया गया और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई; कोमिला की स्कूली छात्राएँ शांति घोष और सुनीति चंद्रेड्डी, जिन्होंने जिला मजिस्ट्रेट की गोली मारकर हत्या कर दी और बीना दास जिन्होंने दीक्षांत समारोह (फरवरी 1932) में अपनी डिग्री प्राप्त करते समय राज्यपाल पर गोली चलाई।[9] इनके प्रयोगों में व्यक्तिगत वीरता के बजाय औपनिवेशिक राज्य के अंगों के विरुद्ध संगठित कार्रवाई पर जोर दिया गया। जिसका उद्देश्य युवाओं के सामने एक उदाहरण स्थापित करना और नौकरशाही को हतोत्साहित करना था।

स्थानीय हिंसा और समानांतर सरकारें

पहली समानांतर सरकार अगस्त 1942 में पूर्वी उत्तर प्रदेश के बलिया में एक स्वघोषित गांधीवादी चित्तू पांडे के नेतृत्व में स्थापित की गई थी। हालांकि यह कलेक्टर को सत्ता सौंपने और सभी गिरफ्तार कांग्रेस नेताओं को रिहा करने के लिए मनाने में सफल रही।[10] यह समानांतर सरकार लंबे समय तक नहीं चल सकी, और जब सैनिक एक सप्ताह बाद पहुँचे, तो उन्हें पता चला कि नेता जा चुके थे।

जातीय सरकार 17 दिसंबर, 1942 को बंगाल के मिदनापुर जिले के तामलुक में स्थापित की गई थी, और सितंबर 1944 तक चला। तामलुक एक ऐसा स्थान था जहां गांधी के रचनात्मक कार्यों ने महत्वपूर्ण प्रगति की थी, साथ ही साथ पिछले जन संघर्षों का स्थल भी था। जातीय सरकार ने चक्रवात राहत, स्कूल अनुदान और एक सशस्त्र विद्युत वाहिनी के गठन में मदद की। इसने मध्यस्थता अदालतों की भी स्थापना की। यह अपेक्षाकृत आसानी से अपने संचालन को जारी रख सकती थी क्योंकि यह क्षेत्र अपेक्षाकृत दूर स्थित था।

प्रति सरकार महाराष्ट्र के सतारा में दुनिया की सबसे लंबे समय तक चलने वाली और सबसे प्रभावी समानांतर सरकार का स्थल बन गया। यह क्षेत्र अपनी स्थापना के बाद से भारत छोड़ो आंदोलन में शामिल रहा है। अगस्त 1942 में शुरू हुए पहले चरण में हजारों लोगों ने कराड, तासगाँव और इस्लामपुर में स्थानीय सरकारी मुख्यालयों पर मार्च किया। इसके बाद तोड़फोड़, डाकघरों पर हमले, बैंक डकैती और टेलीग्राफ तार काटने की घटनाएँ हुई। इसके सबसे महत्वपूर्ण नेता नाना पाटिल और वाई. बी. चव्हाण थे, जिनके अच्युत पटवर्धन और अन्य भूमिगत नेताओं के साथ संबंध थे।[11] हालांकि, 1942 के अंत तक, यह समाप्त हो गया था, जिसमें लगभग 2,000 लोगों को गिरफ्तार किया गया। भूमिगत कार्यकर्ताओं ने 1943 की शुरुआत में फिर से संगठित होना शुरू कर दिया, और वर्ष के मध्य तक, उन्होंने संगठन को सफलतापूर्वक समेकित किया था।

इंडियन नेशनल आर्मी (आईएनए) की उत्पत्ति और पहला चरण

भारतीय युद्धबंदियों से एक सेना बनाने का विचार मूल रूप से मोहन सिंह का था, जो एक भारतीय सेना अधिकारी थे। उन्होंने मदद के लिए जापानियों की ओर रुख करने का फैसला किया। जापानियों ने तब तक भारतीय नागरिकों को ब्रिटिश विरोधी संगठन बनाने के लिए प्रोत्साहित किया था। जापानियों ने युद्ध के भारतीय कैदियों को मोहन सिंह को सौंप दिया, जिन्होंने उन्हें एक इंडियन नेशनल आर्मी में भर्ती करने की कोशिश की। सिंगापुर के पतन के बाद कई युद्धबंदी मोहन सिंह के साथ शामिल होने के लिए तैयार थे। 1942 के अंत तक, 40,000 पुरुष आईएनए में शामिल होने के लिए तैयार थे। यह इरादा था कि आईएनए केवल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और भारत के लोगों के निमंत्रण पर कार्रवाई करेगी।[12]

भारत में भारत छोड़ो आंदोलन के साथ आईएनए को बढ़ावा मिला। सितंबर 1942 में, आईएनए का पहला डिवीजन 16,300 पुरुषों के साथ बनाया गया था। जापानियों के भारतीय आक्रमण पर विचार करने के साथ, आईएनए के सशस्त्र विंग का विचार उनके लिए अधिक प्रासंगिक लग रहा था। लेकिन जल्द ही, मोहन सिंह के नेतृत्व में इंडियन नेशनल आर्मी के अधिकारियों और जापानियों के बीच आईएनए द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका पर गंभीर मतभेद उभर आए। दरअसल, जापानी केवल 2,000 का टोकन बल चाहते थे जबकि मोहन

सिंह एक बहुत बड़ी सेना खड़ी करना चाहते थे।[13] मोहन सिंह को जापानियों ने हिरासत में ले लिया।

सुभाष चंद्र बोस और इंडियन नेशनल आर्मी

सुभाष चंद्र बोस ने यूरोपीय लोगों द्वारा भारतीयों के किसी भी अपमान पर हिंसक प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। जब सुभाष चंद्र बोस को यह स्पष्ट हो गया कि वह गांधी के रास्ते का पालन नहीं कर सकते हैं, लेकिन कांग्रेस गांधी का अनुसरण करने के लिए दृढ़ थी, तो बोस ने स्वतंत्रता संघर्ष के लिए अपने विचारों से अग्रसर होने का फैसला लिया। मार्च 1940 में बोस ने रामगढ़ में एक सम्मेलन बुलाया। यह फॉरवर्ड ब्लॉक और किसान सभा का संयुक्त प्रयास था। सम्मेलन में यह संकल्प लिया गया कि राष्ट्रीय सप्ताह के पहले दिन 6 अप्रैल को एक विश्वव्यापी संघर्ष शुरू किया जाना चाहिए। उन्होंने साम्राज्यवादी हितों के लिए भारतीय संसाधनों के सभी प्रकार के शोषण का प्रतिरोध करने का आह्वान किया।[14] 6 अप्रैल को शुरू किए गए संघर्ष में लोगों की उत्साहजनक भागीदारी थी। बोस को जुलाई में गिरफ्तार कर लिया गया, जब उन्होंने कलकत्ता में होलवेल के लिए प्रस्तावित स्मारक के खिलाफ विरोध किया और सत्याग्रह शुरू करने की कोशिश की। बाद में उन्हें जेल से रिहा कर दिया गया और दिसंबर 1940 में नजरबंद कर दिया गया।

26 जनवरी, 1941 को बोस भगत राम की मदद से छद्म नाम जियाउद्दीन बनकर पेशावर के बाद ब्रिटेन पहुँचे और उन्होंने ब्रिटेन से स्वतंत्रता के लिए भारतीय संघर्ष में मदद के लिए रूस से संपर्क किया। लेकिन, जून 1941 में रूस युद्ध में मित्र राष्ट्रों में शामिल हो गया, जिसने बोस को निराश किया। इसके बाद वह जर्मनी चले गए। बोस ने हिटलर की मदद से, 'फ्रीडम आर्मी' (मुक्ति सेना) का गठन किया, जिसमें जर्मनी और इटली द्वारा पकड़े गए भारतीय मूल के युद्ध के सभी कैदी शामिल थे। ड्रेसडेन, जर्मनी को फ्रीडम आर्मी का कार्यालय बनाया गया था। बोस को जर्मनी के लोग 'नेताजी' कहने लगे। उन्होंने जर्मनी के फ्री इंडिया सेंटर से प्रसिद्ध नारा दिया, 'जय हिंद'।[15]

उन्होंने जनवरी 1942 में बर्लिन रेडियो से नियमित प्रसारण शुरू किया, जिसने भारतीयों को उत्साहित किया। 1943 की शुरुआत में उन्होंने जर्मनी छोड़ दिया और उसी वर्ष जुलाई में जापान और फिर सिंगापुर पहुँचने के लिए जर्मन और बाद में जापानी पनडुब्बियों द्वारा यात्रा की। जून 1943 में सुभाष चंद्र बोस (छद्म नाम आबिद हुसैन के तहत) टोक्यो पहुँचे; जापानी प्रधान मंत्री, तोजो से मुलाकात की। जब सुभाष बोस को जापानियों ने आईएनए का नेतृत्व करने के लिए कहा, तो वह इसके लिए तैयार हो गए। वह सिंगापुर गए और रास बिहारी बोस से मिले, और बाद में जुलाई 1943 से इंडियन इंडिपेंडेंस लीग और आईएनए का नियंत्रण और नेतृत्व सुभाष को हस्तांतरित कर दिया गया। सुभाष बोस 25 अगस्त 1943 को आईएनए के सुप्रीम कमांडर बन गए।[16]

21 अक्टूबर, 1943 को सुभाष बोस ने सिंगापुर में एच. सी. चटर्जी (वित्त विभाग), एम. ए. अय्यर (प्रसारण), लक्ष्मी स्वामीनाथन (महिला विभाग) आदि के साथ स्वतंत्र भारत के लिए अनंतिम सरकार का गठन किया। प्रसिद्ध नारा - "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें स्वतंत्रता दूंगा" मलाया में दिया गया था। इस अनंतिम सरकार ने ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका पर युद्ध की घोषणा की और जिसे एक्सिस शक्तियों द्वारा मान्यता प्राप्त थी। नए भर्ती को प्रशिक्षित किया गया और आईएनए के लिए धन एकत्र किया गया। इन्होंने रानी झांसी रेजिमेंट नामक एक महिला रेजिमेंट का भी गठन किया।

आईएनए मुख्यालय जनवरी 1944 में रंगून (बर्मा में) में स्थानांतरित कर दिया गया, और सेना के रंगरूटों को अपने होंठों पर युद्ध घोष "चलो दिल्ली" के साथ वहाँ से मार्च करना था। 6 नवंबर, 1943 को, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह जापानी सेना द्वारा आईएनए को दिया गया, द्वीपों का नाम बदलकर क्रमशः शहीद द्वीप और स्वराज द्वीप कर दिया गया। 6 जुलाई, 1944 को सुभाष चंद्र बोस ने आजाद हिंद रेडियो से महात्मा गांधी को 'राष्ट्रपिता' कहकर संबोधित किया और उन्होंने 'भारत की आजादी की आखिरी लड़ाई' के लिए गांधी का आशीर्वाद मांगा।

शाहनवाज की कमान वाली एक आईएनए बटालियन को जापानी सेना के साथ भारत-बर्मा मोर्चे पर जाने और इंफाल अभियान में भाग लेने की अनुमति दी गई। हालांकि, भारतीयों को जापानियों से भेदभावपूर्ण व्यवहार मिला, जिसमें राशन और हथियारों से वंचित किया जाना और जापानी इकाइयों के लिए मामूली काम करने के लिए मजबूर किया जाना शामिल था, और इस व्यवहार ने आईएनए इकाइयों को हतोत्साहित किया। आईएनए बर्मा सीमा पार कर 18 मार्च 1944 को भारत की धरती पर खड़ी हो गई। आईएनए इकाइयाँ बाद में कोहिमा और इंफाल तक बढ़ीं। 14 अप्रैल को बहादुर समूह के कर्नल मलिक ने मणिपुर के मोइरांग में भारतीय मुख्य भूमि पर पहली बार आईएनए का झंडा फहराया, ताकि 'जय हिंद' और 'नेताजी जिंदाबाद' के उत्साही नारे लगाए जा सकें।[17] तीन महीने के लिए आईएनए ने मोइरांग में सैन्य प्रशासन कर्तव्यों को पूरा किया लेकिन फिर मित्र देशों की सेनाओं ने क्षेत्र को पुनः प्राप्त कर लिया।

इसके बाद जापान के लगातार पीछे हटने से आईएनए द्वारा राष्ट्र को मुक्त कराने की किसी भी उम्मीद को सीमित कर दिया। 1945 के मध्य तक पीछे हटना जारी रहा। 15 अगस्त 1945 को द्वितीय विश्व युद्ध में जापान का आत्मसमर्पण हुआ और इसके साथ ही आईएनए ने भी आत्मसमर्पण कर दिया। 18 अगस्त, 1945 को सुभाष चंद्र बोस की ताइपे (ताइवान) में एक विमान दुर्घटना के बाद लापता हो गए। ऐसा कहा जाता है कि रहस्यमय परिस्थितियों में उनका निधन हो गया। लेकिन जब युद्ध के बाद आईएनए युद्धबंदियों को कोर्ट मार्शल के लिए भारत वापस लाया गया, तो उनके बचाव में एक शक्तिशाली आंदोलन उभरा।[18]

भारतीय नौसेना विद्रोह

विद्रोह की शुरुआत नौसेना के 'आई.एन.एस. तलवार' से हुई। नाविकों द्वारा खराब खाने की शिकायत करने पर अंग्रेज कमान अफसरों ने नस्ली अपमान और प्रतिशोध का रवैया अपनाया। इस पर 18 फरवरी 1946 को नाविकों ने भूख हड़ताल कर दी। हड़ताल अगले ही दिन कैसल, फोर्ट बैरकों और बम्बई बन्दरगाह के 22 जहाजों तक फैल गयी। 19 फरवरी को एक हड़ताल कमेटी का चुनाव किया गया। नाविकों की माँगों में बेहतर खाने और गोरे और भारतीय नौसैनिकों के लिए समान वेतन के साथ ही आजाद हिंद फौज के सिपाहियों और सभी राजनीतिक बंदियों की

रिहाई तथा इंडोनेशिया से सैनिकों को वापस बुलाए जाने की माँग भी शामिल हो गई।

विद्रोह की खबर फैलते ही कराची, कलकत्ता, मद्रास और विशाखापत्तनम के भारतीय नौसैनिक तथा दिल्ली, ठाणे और पुणे स्थित कोस्ट गार्ड भी हड़ताल में शामिल हो गए। 22 फरवरी हड़ताल का चरम बिंदु था, जब 78 जहाज, 20 तटीय प्रतिष्ठान और 20,000 नौसैनिक इसमें शामिल हो चुके थे। इसी दिन कम्युनिस्ट पार्टी के आह्वान पर बंबई में आम हड़ताल हुई। नौसैनिकों के समर्थन में शांतिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे मजदूर प्रदर्शनकारियों पर सेना और पुलिस की टुकड़ियों ने बर्बर हमला किया, जिसमें करीब तीन सौ लोग मारे गए और 1700 घायल हुए। इसी दिन सुबह, कराची में भारी लड़ाई के बाद ही 'हिंदुस्तान' जहाज से आत्मसमर्पण कराया जा सका। अंग्रेजों के लिए हालात संगीन थे, क्योंकि ठीक इसी समय बंबई के वायुसेना के पायलट और हवाई अड्डे के कर्मचारी भी नस्ली भेदभाव के विरुद्ध हड़ताल पर थे तथा कलकत्ता और दूसरे कई हवाई अड्डों के पायलटों ने भी उनके समर्थन में हड़ताल कर दी थी। कैंटोनमेंट क्षेत्रों से सेना के भीतर भी असंतोष बढ़ने और विद्रोह की संभावना की खुफिया रिपोर्टों ने अंग्रेजों को भयाक्रांत कर दिया था। अत: ब्रिटिश प्रधान मंत्री क्लेमेंट एटली ने चारों ओर संकट को भाँपते हुए 20 फरवरी, 1947 को भारतीय उपमहाद्वीप छोड़ने के ब्रिटिश इरादे की घोषणा की।

निष्कर्ष

अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपनाए जाने वाले तरीकों के संबंध में शुरुआती क्रांतिकारियों के बीच दो समूह थे। एक ने भारतीय सैनिकों की मदद से ब्रिटेन के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष में विश्वास किया और अंतरराष्ट्रीय स्थिति के विकास पर अपना विश्वास जताया जो एक अनुकूल अवसर पैदा कर सकता था और बाहर से आवश्यक मदद ला सकता था। दूसरे ने कहा कि अधिकारियों की हत्या के रूप में उग्र विरोध सरकार की मशीनरी को पंगु बना देगा और उसे घुटनों पर ला देगा। हालांकि, दोनों ने बड़े पैमाने पर देश में एक क्रांतिकारी भावना पैदा करने की तत्काल आवश्यकता महसूस की, ताकि लोग सही समय पर हमला करने के लिए तैयार हो सकें। गुप्त रूप से सैन्य प्रशिक्षण और हथियारों के संग्रह दोनों का एक सामान्य कार्यक्रम था । यद्यपि वे सशस्त्र विद्रोह के माध्यम से स्वतंत्रता प्राप्त करने के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में विफल रहे, फिर भी वे लोगों को उत्तेजित करने और उनके दिमाग से शासन के प्रति भय को दूर करने और शासकों के दिल में आतंक पैदा करने में सफल रहे थे।

दरअसल, क्रांतिकारी आंदोलन बदले की भावना की उपज नहीं था और यह निराशा का परिणाम भी नहीं था। यह कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण और जीवनदायी था। नया विचार राजनीतिक दर्शन के एक मौलिक स्वयंसिद्ध के रूप में आयोजित और घोषित किया गया था, जो राजनीतिक, औद्योगिक, बौद्धिक, सामाजिक या धार्मिक किसी भी आकार या रूप में विदेशी प्रभुत्व या आधिपत्य की निरंतरता में, जीवन के आत्म-चेतना के विकास के लिए घातक थी। आंदोलन मुख्य रूप से खराब सरकार के खिलाफ विरोध नहीं था। यह ब्रिटिश नियंत्रण की निरंतरता के खिलाफ एक विरोध था, भले ही शासन का उपयोग अच्छी तरह से किया जाए या खराब तरीके से, उचित या अन्यायपूर्ण तरीके से किया जाए। यह इस दृढ़ विश्वास से पैदा हुआ था कि वह समय आ गया है जब भारत को एक महान, स्वतंत्र और एकजुट राष्ट्र बनना चाहिए। इस धारणा का कारण यह था कि उन्नीसवीं शताब्दी के आते-आते भारतीय युवकों को गुलामी की शर्मिंदगी चुभने लगी थी। कुछ समय बाद यह पीड़ा बहुत तीव्र हो गई और इनमें से कुछ युवकों ने ब्रिटिश शासन के सभी अवशेषों को मिटाने की दृष्टि से दुस्साहसी कार्य करना शुरू कर दिया। अधिकारियों द्वारा इन 'डेयर डेविल्स' को 'आतंकवादी' और 'अराजकतावादी' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। हालांकि वे सशस्त्र क्रांति के पक्षधर थे, लेकिन अराजकतावादी नहीं थे। और उनका आतंकवाद भी शासन के प्रति था न कि जनमानस के प्रति, वस्तुत: सभी क्रांतिकारी भारत माता पर अपनी जीवन को आहूत करने वाले सच्चे राष्ट्र भक्त थे।

संदर्भ

1. जे. सी. चटर्जी, *इंडियन रेवोलुशनारिएस इन कांफ्रेंस*, पृ. 1.
2. मन्मथनाथ गुप्ता, *हिस्ट्री ऑफ द इंडियन रेवोलुशनार्य मूवमेंट*, सोमैया पब्लिसर्स बॉम्बे 1972, पृ. 17.
3. सुमित सरकार, मॉडर्न इंडिया (1885-1947), मैकमिलन नई दिल्ली 1983.
4. वही पृ. 73.
5. ए. सी. गुहा, *फर्स्ट स्पार्क ऑफ रेवोलुशन: द अर्ली फेज ऑफ इंडियंस स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस*, 1900-1920, पृ. 80.
6. आर. जी. प्रधान, *इंडिया'स स्ट्रगल फॉर स्वराज*, पृ. 60-61.
7. बिपिन चंद्र एण्ड अदर्स, *इंडिया'स स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस*, 2015, पृ. 242.
8. सुमित सरकार, मॉडर्न इंडिया (1885-1947), मैकमिलन नई दिल्ली 1983, पृ. 97.
9. बिपिन चंद्र एण्ड अदर्स, *इंडिया'स स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस*, 2015, पृ. 244.
10. मन्मथनाथ गुप्ता, *हिस्ट्री ऑफ द इंडियन रेवोलुशनार्य मूवमेंट*, सोमैया पब्लिसर्स बॉम्बे 1972, पृ. 121.
11. वही पृ. 21.
12. पीटर हीश, *इंडिया'स फ्रीडम स्ट्रगल : ए शार्ट हिस्ट्री* (1857-1947), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस नई दिल्ली 1988, पृ. 57.
13. मन्मथनाथ गुप्ता, *हिस्ट्री ऑफ द इंडियन रेवोलुशनार्य मूवमेंट*, सोमैया पब्लिसर्स बॉम्बे 1972, पृ. 214.
14. एफ. सी। डली, *फर्स्ट रेबल्स: स्ट्रिक्टली कॉन्फिडेंटिअल नोट ऑन द ग्रोथ ऑफ द रेवोलुशनार्य मूवमेंट इन बंगाल*, रिद्धि-इंडिया कलकत्ता 1981, पृ. 7
15. वही पृ. 7
16. पीटर हीश, *इंडिया'स फ्रीडम स्ट्रगल : ए शार्ट हिस्ट्री* (1857-1947), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस नई दिल्ली 1988, पृ. 98.
17. बिपिन चंद्र एण्ड अदर्स, *इंडिया'स स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस*, (2015).
18. पीटर हीश, *इंडिया'स फ्रीडम स्ट्रगल : ए शार्ट हिस्ट्री* (1857-1947), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस नई दिल्ली 1988, पृ. 168.
19. शैलेशेश्वर नाथ, *टेररिज्म इन इंडिया*, नैशनल पब्लिशिंग हाउस न्यू दिल्ली 1980, पृ. 32.
20. के.सी. यादव और के.एस. आर्य, *आर्य समाज एंड द फ्रीडम मूवमेंट* (1875-1918), मनोहर नई दिल्ली 1988, पृ. 190.

डॉ. लेजिया लखबीर

महान बलिदानी का महान परिवार

यह परिवार की पौधशाला ही थी जहाँ भगत सिंह नाम के पौधे का पालन-पोषण हुआ जो कालांतर में बड़ा होकर बलिदान के वटवृक्ष के रूप में जाना गया। इस परिवार में विदेशी दास्ता के प्रति विद्रोह की परंपरा पर एक दृष्टि

व्यक्ति अपने वंशानुक्रम और परिवेश दोनों की संयुक्त निर्मिति होता है। शहीद भगत सिंह के संदर्भ में, परिवार में देशभक्ति की सुदीर्घ परंपरा तथा उस समय के पंजाब के वातावरण, के उत्कृष्ट युग्म ने मिलकर 'बलिदानियों के युवराज' का निर्माण किया। उनके वंशानुक्रम की जड़ें सरदार फतेह सिंह से मानी जा सकती हैं। फतेह सिंह, जो इस वचन पर अड़े थे कि 'सर जावे ता जावे, मेरे सिखी सिधक न जावे' (यदि मैं मर जाऊँ, तो कोई बात नहीं, किंतु सिखी में मेरा अडिग विश्वास नहीं डिगना चाहिए), महाराजा रणजीत सिंह के शासनकाल के दौरान एक उच्च पद पर आसीन थे। रणजीत सिंह के निधन के बाद, परिवर्तित परिस्थितियों में कई उच्च अधिकारी लालची हो गए और उन्होंने ब्रिटिश सरकार का पक्ष लिया। ब्रिटिश सरकार द्वारा फतेह सिंह को भी धन और पद का प्रस्ताव दिया गया। परंतु फतेह सिंह ने न केवल अपने पंजाब की भूमि को ब्रिटिश सरकार के नियंत्रण में करने के प्रस्ताव को मना कर दिया वरन ऐसा करते हुए वे और उनका परिवार स्थायी रूप से ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति सशंकित हो गए। फलतः, ब्रिटिश शासन के निर्मूल होने तक, न केवल उनके परिवार अपितु भविष्य की पीढ़ियों को भी इसका परिणाम भुगतना पड़ा।

1857 तक, भारतीय सौ वर्षों के ब्रिटिश शासन के अन्याय, उत्पीड़न और अपमान से स्वतंत्रता के लिए आतुर हो गए थे। यद्यपि, स्वतंत्रता के लिए भारत का प्रथम विद्रोह अंततः असफल रहा, फिर भी इससे ब्रिटिश शासक भयभीत हो उठे थे। 1857 के महान विद्रोह का यही वर्ष था जब फतेह सिंह के परिवार में सरदार अर्जन सिंह नाम के उनके गौरवशाली पोते का जन्म हुआ था। कालांतर में अर्जुन सिंह एक अद्‌भुत व्यक्ति निकले; उन्होंने अपने परिवार में पंजाब के कुछ सबसे प्रसिद्ध देशभक्त पैदा किए - अजीत सिंह, किशन सिंह, स्वर्ण सिंह और भगत सिंह। अर्जुन सिंह पंजाब में आर्य समाज में शामिल होने वाले आरंभिक सिखों में भी एक थे। अर्जुन सिंह आर्य समाज के केवल एक साधारण अनुयायी बनकर संतुष्ट नहीं थे, उन्होंने आर्य समाज के साहित्य का विषद अध्ययन किया और अपने क्षेत्र में आर्य समाज के प्रवक्ता बन गए। अर्जुन सिंह ने आर्य समाज के समाज सुधार के सन्देश को गहराई से आत्मसात किया और अपने गाँव में अस्पृश्यता तथा अंधविश्वास की प्रथा पर आघात किया।

अर्जुन सिंह बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे; एक अग्रणी आर्य समाजी होने के साथ ही वे एक कृषक, यूनानी हकीम तथा मुंशी भी थे। उन्होंने परंपराओं को तोड़ा और स्वयं के प्रयासों से ही हिंदी, संस्कृत, उर्दू, फारसी और गुरमुखी सहित पांच भाषओं को सीखा। जब सरकार ने उत्तर पश्चिम पंजाब में बसने वाले प्रत्येक परिवार को 25 एकड़ भूमि देने का प्रस्ताव दिया तो अर्जुन सिंह ने इस अवसर को हाथ से जाने नहीं दिया, और लायलपुर जिले (अब पाकिस्तान में) के बंगा गाँव में बस गए। वहाँ उन्होंने अक्षत भूमि पर अथक परिश्रम किया और एक समृद्ध किसान बन गए। अर्जुन सिंह का सबसे उल्लेखनीय गुण उनका प्रगतिशील और राष्ट्रवादी दृष्टिकोण था। वे एक बहुत धनी किसान या प्रसिद्ध 'हकीम' बन सकते थे लेकिन उन्होंने आर्य समाज और कांग्रेस के कार्य को प्राथमिकता दी। ऐसा कहा जाता है कि दादाभाई नौरोजी जैसे व्यक्ति भी उनकी तरफ आकर्षित हुए थे।[1] वे ऐसे कुछ आरंभिक जाट सिखों में से थे जिन्होंने अपने पुत्रों को खालसा स्कूल नहीं बल्कि जालंधर के सैदास एंग्लो संस्कृत हाई स्कूल में भेजा। उन्होंने अपने समय के सभी राजनीतिक आंदोलनों में भाग

लिया। ऐसे व्यक्ति की देशभक्ति के विषय में और अधिक क्या कहा जा सकता है जिसके एक पुत्र (स्वर्ण सिंह) की मृत्यु जेल की यातना से हुई हो, दूसरे (अजीत सिंह) को विदेशी भूमि पर निर्वासित कर दिया गया हो, एक अन्य (किशन सिंह) जेल में हो, और जो तब भी अपने पौत्रों (जगत सिंह और भगत सिंह) के यज्ञोपवीत के पुनीत अवसर पर उन्हें राष्ट्र के लिए समर्पित करने की सार्वजनिक घोषणा करने का हृदय रखता हो।[2] भगत सिंह ने अपना बचपन अपने दादा के संरक्षण में बिताया क्योंकि उनके पिता और दोनों चाचाओं को उनकी क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण घर छोड़ने पर विवश कर दिया गया था। भगत सिंह को फाँसी दिए जाने के कुछ दिन बाद ही जुलाई 1932 ईस्वी में अर्जन सिंह का निधन हो गया।

अर्जुन सिंह के ज्येष्ठ पुत्र सरदार किशन सिंह का जन्म 1878 ईस्वी में हुआ, सरदार अजीत सिंह का जन्म 23 फरवरी 1881 को हुआ, और सरदार स्वर्ण सिंह का जन्म 1887 ईस्वी में जालंधर के खटकड़ कलां में हुआ।

सैदास एंग्लो संस्कृत स्कूल में पढ़ते समय किशन सिंह अपने छोटे भाई अजीत सिंह के साथ स्कूल के हेडमास्टर सुन्दर दास द्वारा दी गई देशभक्ति की शिक्षाओं से बहुत प्रभावित थे। सुंदर दास एक आर्य समाजी नेता सैदास के पुत्र थे।[3] किशन सिंह ने अपना सार्वजनिक जीवन आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता और डीएवी कॉलेज, लाहौर के प्रमुख लाला हंसराज के मार्गदर्शन में आरम्भ किया था।[4] किशन सिंह ने भारत के विभिन्न हिस्सों में प्राकृतिक आपदाओं के दौरान अनुकरणीय सार्वजनिक सेवा प्रदान की, यथा, 1898 और 1900 में क्रमशः बेरार और गुजरात में अकाल, 1904 में काँगड़ा के भूकंप, और 1905 में श्रीनगर में झेलम की बाढ़। आपदा प्रभावित क्षेत्रों के प्रति सरकार की उदासीनता ने ब्रिटिश सरकार के औपनिवेशिक और विदेशी शासन के स्वरुप के प्रति उनकी वितृष्णा को और अधिक प्रबल बना दिया। 1905-06 में स्वदेशी आंदोलन के दौरान अपने छोटे भाई अजीत सिंह के साथ वे उग्रवादी राजनीति में कूद पड़े। पंजाब में इस आंदोलन ने कृषक मुद्दों जैसे औपनिवेशीकरण अधिनियम, बारी दोआब अधि नियम, तथा राजस्व वृद्धि के आसपास केन्द्रित होकर एक लोकप्रिय विद्रोह का स्वरुप धारण कर लिया था। आंदोलन के समन्वय के लिए, उस समय के प्रमुख दिग्गजों जैसे सूफी अम्बा प्रसाद, अजीत सिंह, किशन सिंह, लाला हरदयाल, स्वर्ण सिंह, करतार सिंह केसरगढ़िया, लाल चंद फलक, महाशय घसीटा राम, मेहता आनंद किशोर, जिया उल हक, केदार नाथ सहगल और लाला पिंडी दास के संयुक्त प्रयासों से '*भारत माता सोसाइटी*' का गठन किया गया। इस सोसाइटी ने उर्दू में '*भारत माता*' नाम से एक समाचारपत्र भी निकला। ठीक ही कहा गया है कि किशन सिंह इस आंदोलन की भुजा थे जबकि अजीत सिंह इसके हृदय; सूफी अम्बा प्रसाद इसकी आत्मा थे और हरदयाल इसका मस्तिष्क।[5] कुछ समय के लिए किशन सिंह ने क्रन्तिकारी मुखपत्र सहायक का संपादन भी किया। किशन सिंह में वे सभी गुण थे जो एक अनुभवी क्रन्तिकारी के पहचान बनते हैं। एक संगठनकर्ता के रूप में, वे प्रतिभावान थे, वे भारी निगरानी के दौरान भी गुप्त और प्रभावी ढंग से काम कर सके थे, और सबसे महत्वपूर्ण रूप से, वह कठिन परिस्थितियों में भी अपने आप को शांत रखने और मानसिक संतुलन बनाए रखने में सक्षम थे।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान, किशन सिंह ने वित्तीय और अन्य साधनों द्वारा गदर पार्टी के आंदोलन का समर्थन किया। उनके अपने समय के प्रमुख क्रांतिकारियों जैसे शचींद्र नाथ सान्याल के साथ संबंध थे। हार्डिंग बम कांड के बाद उन्होंने रस बिहारी बोस की भी सहायता की थी। ब्रिटिश सरकार किशन सिंह की गतिविधियों से अवगत थी और उन्हें साम्राज्य के लिए खतरा मानती थी।[6] फलतः, उन्हें कई परीक्षणों का सामना करना पड़ा और वे कई बार जेल भी गए। जेल में रहते हुए उन्होंने कई बार अत्याचार का विरोध किया। वह जेल नियमों के सुधार के लिए भूख हड़ताल करने वाले अग्रदूतों में से एक थे। कुछ वर्षों बाद उनके पुत्र भगत सिंह को भी इसी मसले पर एक ऐतिहासिक भूख हड़ताल का नेतृत्व करना पडा था। भगत सिंह ने बाद में स्वयं के ऊपर अपने पिता के प्रभाव को इन शब्दों में व्यक्त किया - यह उनकी शिक्षा के माध्यम से ही था कि मैं अपने जीवन स्वतंत्रता के लिए समर्पित करने की आकांक्षा रखता था।[7]

भगत सिंह के बलिदान के बाद भी किशन सिंह का परिवार ब्रिटिश साम्राज्य के लिए एक कंटक के रूप में बना रहा। उनके अन्य पुत्रों को बंधक के रूप में रहने के लिए विवश कर दिया गया था। अपने अंतिम दिनों में, पक्षघात के कारण किशन सिंह स्वयं को असहाय महसूस करने लगे थे। इसके बाद भी, अपने आत्मविश्वास और दृढ़ संकल्प की बदौलत वे डंडा लेकर लोक कल्याण के कार्यों में संलग्न रहे। 1938 में कांग्रेस के टिकट पर वे पंजाब विधानसभा के लिए निर्वाचित हुए।[8] किशन सिंह, जिन्होंने अपना पूरा जीवन लड़ते हुए बिताया लेकिन कभी हार न मानी, का 1951 में स्वतंत्र भारत की उन्मुक्त वायु में देहांत हो गया। उनकी पोती, वीरेंद्र सिंधु के शब्दों में, "वे एक जन्मजात विद्रोही थे और अपने अंतिम दिन तक क्रांतिकारी बने रहे।"[9] बाद में भगत सिंह ने स्वयं के ऊपर अपन पिता के प्रभावों को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया - "यह उनकी शिक्षा के माध्यम से ही था कि मैं अपने जीवन स्वतंत्रता के लिए समर्पित करने की आकांक्षा रखता था।"[10]

अपने बड़े भाई किशन सिंह की तरह ही सरदार अजीत सिंह भी आर्य समाज और देशभक्ति के वातावरण की निर्मिति थे। उन्होंने डीएवी कॉलेज, लाहौर में अध्ययन किया। उन्होंने आर्य समाज के लिए कई पर्चे और पुस्तके लिखीं जिनमें 'विधवा की पुकार' (*विडो'ज क्राई*) बहुत प्रसिद्ध हुई।[11] 1896 में इंटरमीडिएट पास करने के पश्चात उनकी नियुक्ति एक स्कूल अध्यापक के रूप में हुई। कुछ समय तक विधि की पढ़ाई करने के पश्चात, उन्होंने अध्यापन के साथ-साथ सामाजिक कार्य भी आरंभ कर दिया। इसी दौरान अजीत सिंह ने बंगाल की यात्रा की और वहाँ क्रांतिकारियों से मिले। 1903 में, लार्ड कर्जन द्वारा आयोजित शाही दरबार के दौरान अजीत सिंह, जो तब मात्र बाईस वर्ष के एक युवक थे, ने 1857 की तरह के विद्रोह के लिए देशी राजकुमारों को गुप्त रूप से उकसाने का प्रयास किया।[12] जब लार्ड कर्जन ने 1905 में बंगाल का विभाजन किया और इससे देशव्यापी आंदोलन आरंभ हो गया तो इस संदर्भ में एक सभा का आयोजन दादा भाई नौरोजी के नेतृत्व में किया गया। इस बैठक में सरदार किशन सिंह और सरदार अजीत सिंह ने भी भाग लिया। इस समय कांग्रेस दो धड़ों में विभाजित हो गई - नरमपंथी और गरमपंथी। दोनों भाइयों ने लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में गरमपंथी गुट को चुना।

अजीत सिंह का सबसे शानदार कारनामा 'पगड़ी संभाल जट्टा' नामक एक कृषक आंदोलन का संगठन था। इस समय, अम्बा प्रसाद और अजीत सिंह ने भारत माता सोसाइटी की सह-स्थापना की। इस सोसाइटी के अन्य गणमान्य नेताओं में शामिल थे सरदार किशन सिंह, सरदार स्वर्ण सिंह, और अन्य। इस सोसाइटी ने भारत माता बुक एजेंसी की स्थापना की जिसका लक्ष्य था राज-विरोधी साहित्य का प्रकाशन और वितरण। इस संगठन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में शामिल थीं *1857 दी बगावत, देसी फौज, जबर जना:, और बागी मसीह,* अंतिम पुस्तक सूफी अम्बा प्रसाद द्वारा लिखित अजीत सिंह की जीवनी थी। यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय हुई। अजीत सिंह की वक्तृत्व कला अद्भुत थी। उनके मार्मिक भाषणों ने छावनियों के सैनिकों को भी आकर्षित किया और इस प्रकार एक सैन्य विद्रोह की आस जगी। सरकार इस आंदोलन से बहुत चिंतित हो गई क्योंकि इसमें किसानों और जवानों में एक व्यापक विद्रोह भड़कने की संभावना थी। एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार, अजीत सिंह, "राजनीतिक बैठकों में सबसे हिंसक वक्ता थे, उन्होंने प्राय: सरकार के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध की वकालत की थी, और उनकी बातें बड़े पैमाने पर कृषक वर्ग और सैनिकों के बीच असंतोष को भड़काने की दिशा में निर्देशित रही हैं।"[13]

अजीत सिंह को 2 जून 1907 में गिरफ्तार कर लिया गया और मांडले के किले में लाला लाजपत राय के साथ रखा गया। जेल में रहते हुए, अजीत सिंह ने *मुहिब्बाने वतन* नाम से संसार भर के क्रांतिकारियों के जीवन वृत्तों का संकलन लिखा जिसे सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया। नवंबर 1907 में अपनी रिहाई के बाद, अजीत सिंह ने भारत माता सोसाइटी को बल प्रदान करने की कोशिश की किन्तु शीघ्र ही उन्होंने पाया कि सरकार उनके विरुद्ध षड्यंत्र की मामला लाने की तैयारी कर रही थी, और अपने सहकर्मियों की सलाह पर उन्होंने चुपके से भारत छोड़ने का निर्णय लिया। 1909 में अजीत सिंह ने भारत छोड़ दिया और ईरान, तुर्की, मध्य एशिया, जर्मनी, फ्रांस, स्विट्जरलैंड, ब्राजील और इटली समेत कई देशों में भटकते रहे। वहाँ उनकी भेंट क्रांतिकारियों से हुई और वे भारत की स्वतंत्रता के लिए लगातार काम करते रहे। पंडित जवाहरलाल नेहरू के प्रयासों के कारण स्वतंत्रता के पश्चात वे भारत लौट आए, और 15 अगस्त 1947 को डलहौजी में उनका निधन हो गया।

1904-05 में भगत सिंह के सबसे छोटे चाचा सरदार स्वर्ण सिंह ने सरदार किशन सिंह द्वारा स्थापित एक अनाथालय की बागडोर संभाली। 1905-06 में वे अजीत सिंह के साथ भारत माता सोसाइटी के कार्यों में सहयोगी हो गए। 1907 में स्वर्ण सिंह को पकड़ लिया गया और नौ महीने जेल की सजा सुनाई गई। बाद में अपील करने पर उन्हें जमानत मिल गई। तत्पश्चात उन्हें पुन: एक वर्ष और छ: माह कारावास की सजा सुनाई गई। जेल में रहते हुए उन्हें तपेदिक हो गया और रिहाई के केवल डेढ़ वर्ष पश्चात ही 23 वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हो गई।

इस परिवार के संस्कार ही थे जिसके कारण पीढ़ी दर पीढ़ी यह परिवार इस मार्ग पर चलता रहा। इस परिवार की स्त्रियों, जिन्होंने वीरों और योद्धाओं को बड़ा किया, के बलिदान को दृष्टि ओझल नहीं किया जा सकता है। भगत सिंह की दादी जय कौर ने एक सामाजिक क्रांतिकारी से विवाह किया और क्रांतिकारी बेटे और क्रांतिकारी पोते प्राप्त किए। उन्होंने कई क्रांतिकारियों का आतिथ्य किया और घायलों तथा विकलांगों के लिए महान नर्स थीं। कठिन परिस्थितियों में भी वे अडिग रहीं। एक बार, पुलिस द्वारा चारों तरफ से घेर लिए जाने के बाद प्रसिद्ध क्रन्तिकारी सूफी अम्बा प्रसाद अपने घर में छुपे हुए थे। जय कौर की बुद्धिमत्ता और परायणता ने सूफी साहिब को पुलिस के घेरे से बचाकर भगा दिया।[14] जय कौर भगत सिंह का विवाह करना चाहती थीं। परिवार में जय कौर की तीन बहुएँ, भगत सिंह की माँ, विद्यावती, चाची हरनाम कौर, अजीत सिंह की पत्नी, और चाची हुकम कौर, स्वर्ण सिंह की पत्नी, सम्मिलित थीं। उस माँ की पीड़ा की कल्पना की जा सकती है जिसकी दो बहुएँ उसकी आँखों के सामने दयनीय स्थिति में रह रही हों। उन्हें गाँव का प्रधान चुनकर सम्मानित किया गया। जय कौर का निधन 1940 में हुआ।

भगत सिंह की माँ विद्यावती का विवाह ग्यारह वर्ष की आयु में हुआ था। वह एक साधारण परिवार से आती थीं, किन्तु उनकी ससुराल सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों की गढ़ थी। उनके छ: पुत्र और तीन पुत्रियाँ थीं - जगत सिंह, भगत सिंह, कुलवीर सिंह, कुलतार सिंह, राजिंदर सिंह, रणवीर सिंह, तथा अमर कौर, समितिरा और शकुंतला। भगत सिंह की सभी तीनों पुत्रियाँ उनसे छोटी थीं, और उनका सबसे बड़ा पुत्र जगत सिंह तभी मर गया था जब वह बालक ही था। विद्यावती का जीवन परिस्थितियों तथा कष्ट से संघर्ष में ही बीता। वे प्राय: इस बात का स्मरण करतीं कि भगत सिंह को मृत्युदंड की सजा मिलने के बाद वे सार्वजनिक रूप से रो भी न सकी थीं क्योंकि भगत सिंह उन्हें यह कहकर चुप करा देते कि "लोग क्या कहेंगे कि भगत सिंह की माँ रो रही है?" जब किशन सिंह पक्षघात के कारण विस्तार पर पड़े थे तब 1931 से 1934 के मध्य विद्यावती के परिवार को एक गंभीर आर्थिक संकट से जूझना पड़ा। भगत सिंह की गिरफ्तारी के समय से और भगत सिंह के मुकदमे के दौरान परिवार का सारा फर्नीचर बिक गया था। 1939-40 में उनके उनके पुत्रों कुलबीर सिंह और कुलतार सिंह को जेल में डाल दिया गया था। गंभीर वित्तीय संकट और मानसिक प्रताड़ना के बाद भी विद्यावती ने धैर्य बनाए रखा। वह घर संभालती थीं, खेतों की देखभाल करती थीं, और प्रदर्शनों और बैठकों में भी भाग लेती थीं। 1963 में, खटकड़ कलां में सरदार भगत सिंह की एक प्रतिमा लगाई गई। विद्यावती को पंजाब माता

इस परिवार के संस्कार ही थे जिसके कारण पीढ़ी दर पीढ़ी यह परिवार इस मार्ग पर चलता रहा। इस परिवार की स्त्रियों, जिन्होंने वीरों और योद्धाओं को बड़ा किया, के बलिदान को दृष्टि ओझल नहीं किया जा सकता है। भगत सिंह की दादी जय कौर ने एक सामाजिक क्रांतिकारी से विवाह किया और क्रांतिकारी बेटे और क्रांतिकारी पोते प्राप्त किए। उन्होंने कई क्रांतिकारियों का आतिथ्य किया और घायलों तथा विकलांगों के लिए महान नर्स थीं

कहा जाता था। उनका निधन 1 जून 1975 को हुआ और उनका अंतिम संस्कार सतलुज नदी के तट पर फिरोजपुर के हुसैनीवाला में उसी स्थान पर किया गया जहाँ भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु और बटुकेश्वर दत्त का अंतिम संस्कार किया गया था।

भगत सिंह के परिवार की अन्य स्त्रियों ने भी स्वतंत्रता संग्राम के दौरान काफी कष्ट सहा। हरनाम कौर को इस बात का जरा भी भान नहीं था कि उनके पति अजीत सिंह जीवित थे या मर गए। हुकुम कौर बीस साल की आयु में ही विधवा हो गई थीं और इस बोझ को 56 वर्ष की अवस्था तक ढोती रहीं। उन्होंने भी भगत सिंह और उनके भाई-बहनों की देखभाल की और प्यार किया। यही कारण था कि भगत सिंह अपनी चाची से इतना लगाव था। उनके पत्रों से यह एकदम स्पष्ट था कि भगत सिंह हरनाम कौर को अत्यधिक मानते थे। हरनाम कौर का निधन फरवरी 1962 ईस्वी में फिरोजपुर में हुआ। उनके इच्छा अनुसार उनका अंतिम संस्कार भगत सिंह की समाधि के पास ही किया गया। अमर कौर भगत सिंह की छोटी बहन थी। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के राजनीतिक और सामाजिक दोनों ही गतिविधियों में सक्रिय भाग लिया। उन्होंने लाहौर में भारतीय तिरंगा फहराया और विभाजन के दौरान कई मुस्लिम महिलाओं को पाकिस्तान जाने का मार्ग प्रशस्त किया। 1955 ईस्वी में उन्हें राष्ट्रपति पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया।[15]

इस परिवार में भगत सिंह का जन्म 28 सितम्बर 1907 को पाकिस्तान के लायलपुर जिले के बंगा गाँव में हुआ था। जब भगत सिंह का जन्म हुआ, तब पूरे देश में राजनीतिक गतिविधियाँ सर्वकालिक उच्च स्तर पर थीं। बंगाल के विभाजन के विरुद्ध जनाक्रोश अपने चरम पर था, स्वदेशी आंदोलन के दौरान पहली बार आम जनता ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सड़कों पर उतरी थी, बंगाल के अग्रणी क्रांतिकारी जैसे *युगांतर, संध्या,* और *बंदेमातरम* पूर्ण स्वातंत्र्य के आह्वान से अटे पड़े थे। कांग्रेस राजनीतिक भीख माँगना छोड़कर संघर्ष के मार्ग पर लौट रही थी; लाल, बाल और पाल राष्ट्रीय राजनीतिक प्रतीक बन गए थे। पंजाब अजीत सिंह, सूफी अम्बा प्रसाद, और लाला लाजपत राय के आग्नेयी भाषणों का साक्षी बन रहा था। पूरे देश में अशांति का एक सामान्य वातावरण विद्यमान था।

भगत सिंह के जन्म के दिन उनके पिता किशन सिंह, छोटे चाचा स्वर्ण सिंह और उनके चाचा अजीत सिंह को जेल से रिहा कर दिया गया। हर कोई उन्हें सौभाग्यशाली - भागोंवाला - कहने लगा। फलतः, उनकी दादी माता जय कौर ने उन्हें भगत सिंह नाम दिया। भगत सिंह ने अपनी प्राथमिक शिक्षा के लिए गाँव के स्कूल में पढ़ाई की। अपनी प्राथमिक शिक्षा शिक्षा पूरी करने के पश्चात भगत सिंह के पिता ने उनका नाम लाहौर के डीएवी कॉलेज में लिखाया। यद्यपि यह व्यापक रूप से जाना जाता था कि सिख छात्रों को खालसा कॉलेजों/स्कूलों में शिक्षा दिलाई जाती रही है, भगत सिंह के पिता ने उन्हें खालसा के स्थान पर डीएवी में भर्ती कराया। वास्तव में, उस समय खालसा कॉलेजों का प्रबंधन जिन लोगों के हाथों में था वे ब्रिटिश के प्रति निष्ठावान थे, और यहाँ, राज्य के प्रति निष्ठा राष्ट्र के प्रति निष्ठा पर भारी पड़ती थी। वे भगत सिंह को एक राष्ट्रवादी और देशभक्त वातावरण में शिक्षा दिलाना चाहते थे। असहयोग आंदोलन के दौरान, भगत सिंह ने लाहौर के नेशनल कॉलेज में प्रवेश लेने के लिए डीएवी कॉलेज छोड़ दिया। भगत सिंह को राष्ट्रवादी शिक्षण संस्थानों की निर्मिति के रूप में भी देखा जा सकता है।

इस अंक में भगत सिंह को आकार देने में आर्य समाज की भूमिका पर अलग से चर्चा की गई है। यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि आर्य समाज उत्तर भारत, और विशेष रूप से पंजाब में राष्ट्रवाद की पौधशाला रहा है। गदर आंदोलन, जलियांवाला बाग की घटना, और असहयोग आंदोलन जैसी घटनाओं ने पंजाब के राजनीतिक वातावरण को विद्युतीकृत कर दिया था। पंजाब गदरवादियों की गिरफ्तारी, मुकदमे और सजाओं का साक्षी बना। पूरा प्रांत गदर पार्टी के नायकों और बलिदानियों के कहानियों से गुंजायमान हो रहा था। युवा भगत सिंह गदरवादी किशोर करतार सिंह सराभा को अपना आदर्श मानते थे। करतार सिंह सराभा को जब फाँसी दी गई तब भगत सिंह मात्र दस वर्ष के थे। वे अपनी थैली में हर समय करतार सिंह सराभा का एक चित्र रखते थे। जब भगत सिंह की माँ पूछती थीं, तब वे उत्तर देते थे, "मेरी प्यारी माँ, यह मेरा नायक, मित्र और साथी है।"

निष्कर्षतः, भगत सिंह अपने परिवार की परम्परा और 20वीं सदी के आरम्भ में पंजाब में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष के राष्ट्रवादी वातावरण से प्रेरित थे। उनका पूरा परिवार राष्ट्रभक्ति और देश से प्यार की भावना से इतना अभिभूत था कि वह अपने व्यक्तिगत कष्टों से बेसुध हो गया था। जब हम सरदार फतेह सिंह से लेकर भगत सिंह तक इस परिवार के इतिहास को देखते हैं तो पाते हैं कि इस परिवार की पाँच पीढ़ियों ने स्वेच्छा से कष्ट सहे और देश के लिए स्वयं को बलिदान कर दिया।

संदर्भ

1. वीरेंदर सिन्धु, युगद्रष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे, राजपाल, नयी दिल्ली, 2009, पृ. 16
2. भगत सिंह का अपने पिता को पत्र, उद्धृत, वीरेंदर सिन्धु, पत्र और दस्तावेज, 1996, पृ. 18
3. सत्यकेतु विद्यालंकार, आर्य समाज का इतिहास, खंड VI, पृ. 52
4. वीरेंदर सिन्धु, युगद्रष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे, पूर्व उद्धृत, पृ. 27
5. वही, पृ. 28
6. लाहौर षड्यंत्र काण्ड का निर्णय, केस - I, 1915, उद्धृत, जी. एस. देओल, शहीद भगत सिंहः ए बिब्लिओग्राफी, 1985, पृ. 6
7. व्हाई ऍम आई एन अथीस्ट, पूर्व उद्धृत, पृ. 122
8. वीरेंदर सिन्धु, युगद्रष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे, पूर्व उद्धृत, पृ. 44
9. वही, पृ. 26
10. शिव वर्मा, सं., सिलेक्टेड राइटिंगस ऑफ शहीद भगत सिंह, समाजवादी साहित्य सदन, कानपुर, 1996, पृ. 122
11. वीरेंदर सिन्धु, युगद्रष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे, पूर्व उद्धृत, पृ. 71
12. वही, पृ. 68
13. होम पोलिटिकल फाइल, 1907, 148-235
14. वीरेंदर सिन्धु, युगद्रष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे, पूर्व उद्धृत, पृ. 25
15. अप्रकाशित सामग्री, हरीश जैन, भगत सिंह एंड हिज इलसट्रियस फॅमिली
16. वीरेंदर सिन्धु, युगद्रष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे, पूर्व उद्धृत, पृ. 130
17. गुरदेव सिंह देओल, शहीद भगत सिंहः ए बायोग्राफी, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, 1985, पृ. 13-14

भगत सिंह का पत्र पिता के नाम

वर्ष 1923 में भगत सिंह की दादी जय कौर की इच्छा का सम्मान करते हुए भगत सिंह के पिता सरदार किशन सिंह ने अपने पुत्र के विवाह की तैयारियाँ शुरू कर दीं। किंतु, भगत सिंह ने तो अपना जीवन राष्ट्र सेवा के लिए समर्पित करने का संकल्प लिया था। वे जानते थे कि जिस पथ पर वे चले थे वह फाँसी के तख्ते पर जाकर ही समाप्त होता था। उनके बचपन के मित्र जयदेव गुप्ता ने नेहरू मेमोरियल म्यूजियम व लाइब्रेरी को दिए साक्षात्कार में बताया था कि विवाह के विषय पर बात करते समय भगत सिंह कहते थे कि उनके घर में पहले ही दो चाचियाँ वर्षों से मौन आँसू बहा रही हैं। एक चाचा जेल में अंग्रेजों के क्रूर अत्याचारों के परिणामस्वरूप शहीद हो गए थे और दूसरे वर्षों से निर्वासन झेल रहे थे जिनके जीवित होने की भी जानकारी नहीं थी। वे नहीं चाहते थे कि वे भी किसी निर्दोष लड़की को जीवन भर रोने के लिए छोड़ जाएँ।

वर्ष 1923 के उत्तरार्ध में बिना किसी को कुछ बताए भगत सिंह ने घर छोड़ दिया था। जाते समय वे यह पत्र अपने पिता सरदार किशन सिंह के लिए छोड़ गए थे:

"पूज्य पिता जी,

नमस्ते!

मेरी जिंदगी मकसदे-आला (उच्च उद्देश्य) यानी आजादी-ए-हिंद (भारत की स्वतंत्रता) के असूल (सिद्धांत) के लिए वक्फ (दान) हो चुकी है। इसलिए मेरी जिंदगी में आराम और दुनियावी ख्वाहशात (सांसारिक इच्छाएँ) बायसे-कशिश (आकर्षण) नहीं हैं।

आपको याद होगा कि जब मैं छोटा था, तो बापूजी ने मेरे यज्ञोपवीत के वक़्त ऐलान किया था कि मुझे खिदमते-वतन (देश सेवा) के लिए वक्फ कर दिया गया है। लिहाजा मैं उस वक़्त की प्रतिज्ञा पूरी कर रहा हूँ।

उम्मीद है आप मुझे माफ फरमाएँगे।

आपका ताबेदार

भगत सिंह"

साभार: वीरेंद्र सिंधु, 'सरदार भगत सिंह : पत्र और दस्तावेज', राजपाल, दिल्ली

स्वामी सुमेधानंद सरस्वती

सरदार भगत सिंह और आर्य समाज

सरदार भगत सिंह को बार-बार केवल एक नास्तिक के रूप में प्रचारित किया जाता है। यह प्रचार करते हुए बड़ी सुविधापूर्वक भुला दिया जाता है कि शहीदे आजम का पूरा परिवार कई पीढ़ियों से आर्यसमाजी था और खुद उनके जीवन पर भी आर्य समाज का गहरा प्रभाव था

महर्षि दयानंद सरस्वती ने भारत के राष्ट्रीय स्वाभिमान को जागृत करने के लिए स्वदेश, स्वधर्म, स्वभाषा तथा स्व संस्कृति के गौरव का पुनराख्यान किया। उनके तेजस्वी तथा त्यागपूर्ण जीवन ने संपूर्ण भारत में एक वैचारिक क्रांति को जन्म दिया, जिससे पाश्चात्य शिक्षा तथा सभ्यता से प्रभावित नवशिक्षित भारतीय भी अपनी प्राचीन संस्कृति व वैभवशाली अतीत को जान सके तथा उनमें देशभक्ति के भाव जागृत हो सके।

महर्षि दयानंद सरस्वती एक वीतराग संन्यासी थे, जिन्हें प्राय: वैरागी के रूप में देखा जाता है, परंतु महर्षि दयानंद सरस्वती के अंत:करण में ईश्वर भक्ति के भाव के साथ-साथ राष्ट्रप्रेम की भावना भी हिलोरें ले रही थी।

महर्षि दयानंद सरस्वती ने इसी भाव से सत्यार्थ प्रकाश ग्रंथ के ग्यारहवें समुल्लास में लिखा- "यह आर्यावर्त देश ऐसा है, जिसके सदृश भूगोल में दूसरा देश नहीं है। इसलिए इस भूमि का नाम 'सुवर्ण भूमि' है, क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है, भूगोल में जितने देश हैं, वे सभी इसी देश की प्रशंसा करते हैं और आशा रखते हैं कि जो पारसमणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूठी है,परंतु आर्यावर्त देश ही ऐसा सच्चा पारसमणि है कि जिसे छूने के साथ ही लौह रूप दरिद्र विदेशी स्वर्ण अर्थात धनाढय हो जाते हैं।"

यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के छठे मंत्र की व्याख्या करते हुए महर्षि दयानंद सरस्वती लिखते हैं, "मनुष्य को अपने सामने सदा दो प्रयोजन रखकर उनकी पूर्ति के लिए अपना सब व्यवहार करना चाहिए। पहला यह कि अत्यंत पुरुषार्थ करके और शरीर को स्वस्थ रखकर वह चक्रवर्ती राज्य रूपी श्री का संपादन करे और दूसरा यह कि सब विद्याओं को पढ़कर सब जगह उनका प्रचार करे।"

अथर्ववेद के एक मंत्र का अर्थ करते हुए ऋषि लिखते हैं, "जब कोई कर्मयोगी प्रजागण सबसे प्रथम संगठित होता है तब वह स्वराज्य प्राप्त करता है, जिससे दूसरा कोई राज्य नहीं है।" यहाँ पर ऋषि के दो आशय प्रकट होते हैं- एक तो यह कि राष्ट्र या स्वराज्य के लिए संगठन पहला है। दूसरा भाव यह है कि स्वराज्य से ही उन्नति संभव है।

महर्षि के इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर सन 1916 में लोकमान्य तिलक ने स्वराज्य के जन्मसिद्ध अधिकार होने की घोषणा की। इसके बाद कांग्रेस ने सन 1928 के लाहौर अधि वेशन में पूर्ण स्वराज्य की घोषणा की, परंतु महर्षि दयानंद जी ने तो इससे 55 वर्ष पूर्व ही स्वराज्य की माँग कर डाली थी। महर्षि दयानंद जी के स्वतंत्रता के प्रति श्रद्धा तथा समाज सुधार के विचारों से अनेक लोग प्रभावित हुए। इन्हीं महापुरुषों की सूची में सम्मिलित थे - शहीदे आजम सरदार भगत सिंह के दादा सरदार अर्जुन सिंह जी।

आर्य समाज द्वारा चलाए गए आंदोलन से प्रभावित होकर अधिसंख्य क्रांतिकारी इस ओर चले आए तथा उन पर इस संगठन की विचारधारा का प्रभाव पड़ा। इस विचारधारा से सरदार भगत सिंह का परिवार भी प्रभावित हुआ।

परिवार पर आर्य समाज का प्रभाव

सरदार भगत सिंह के दादा सरदार अर्जुन सिंह का महर्षि के संपर्क में आना, उनके दर्शन करना, उनके प्रवचन सुनना, जीवन में क्रांतिकारी घटना सिद्ध हुई।

हुतात्मा भगत सिंह की भतीजी वीरेन्द्र सिंधू

लिखती हैं, "घर का वातावरण उग्र आर्य समाजी था तथा उन दिनों आर्य समाज का अर्थ था स्वदेशाभिमान। सरदार अर्जुन सिंह राष्ट्रीय आर्यसमाजी क्रांति के उग्र नेता थे। वे हवन के बाद वीर पुत्रो की प्राप्ति के लिए भगवान से नित्य प्रार्थना किया करते थे। कौन नहीं मानेगा कि इससे घर मे विशेष वातावरण बनता था।"

सरदार भगत सिंह के पिता सरदार किशन सिंह जी उनके चाचा सरदार अजीत सिंह व स्वर्ण सिंह ने मित्रों के साथ मिलकर देशव्यापी क्रांति की योजना पर विचार किया। दो निर्णय हुए। क्रांतिकारी संस्था संगठन का निर्माण तथा उसका नेतृत्व करने के लिए वीर पुत्रों का जन्म दोनो भाइयों ने बडे भाई किशन सिंह से कहा - संस्था का काम हम सब करेंगे, पर दूसरा काम तो आप ही को करना है। सरदार भगतसिंह के जन्म से पहले ही उनके क्रांतिकारी जीवन की नींव रख दी गई थी।

सरदार अर्जुन सिंह जी ने राष्ट्रप्रेम व समाज सुधार की प्रेरणा महर्षि दयानंद जी से ली। सरदार भगत सिंह के पिता सरदार किशन सिंह व चाचा सरदार अजीत सिंह जालंधर के साईदास ऐंग्लो वैदिक स्कूल में पढ़े। इस विद्यालय के अध्यापक लाला सुंदरदास जी ने इनके जीवन में देशभक्ति के विचारों का बीजारोपण किया तथा इनके पिताजी से मिले संस्कारों को पोषित किया।

महर्षि दयानंद सार्थक नाम रखने हेतु प्रेरणा देते थे। सरदार भगत सिंह जी की माता जी का जन्म का नाम इन्दी था, उसे बदलकर उनका नाम विद्यावती रखा गया तथा उन्हें पढ़ाया भी गया। यह महर्षि दयानंद जी व आर्य समाज के प्रभाव का ही प्रतिफल था।

सरदार भगत सिंह जी का नामकरण संस्कार व यज्ञोपवीत संस्कार वैदिक विधि से हुआ, इनका व इनके भाई जगत सिंह का उपनयन संस्कार आर्य समाज के विद्वान पं. लोकनाथ तर्क वाचस्पति ने करवाया। जिस समय इनका उपनयन संस्कार किया गया उस समय इनकी आयु 11 वर्ष थी। सरदार भगत सिंह जी अपनी चिट्ठियों पर ओउम तथा अभिवादन मे नमस्ते लिखते थे। सरदार भगत सिंह के अनुज सरदार कुलतार सिंह बताते हैं कि भगत सिंह हिंदी के कुशल लेखक थे। पदमश्री आचार्य क्षेमचंद्र 'सुमन' ने इस तथ्य को रेखांकित करते हुए लिखा है।

यह निर्विवाद सत्य है कि यदि आर्य समाज द्वारा वैचारिक क्षेत्र में ऐसे क्रांतिकारी परिवर्तन न होते तो हिन्दी साहित्य को श्री प्रेमचन्द, श्री सुदर्शन, श्री चतुरसेन शास्त्री, यशपाल और राहुल सांकृत्यायन जैसे प्रखर और मेधावी कलाकार कैसे उपलब्ध होते, आचार्य क्षेमचंद्र जी ने खेद व्यक्त करते हुए लिखा है कि सरदार भगत सिंह को हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में उचित स्थान व सम्मान न दिया गया। उल्लेखनीय है कि श्री सरदार भगत सिंह की योग्यता के पीछे भी आर्य समाज की संस्था डी.ए.वी. का ही योगदान है।

नेशनल कालेज लाहौर में प्रवेश

सरदार भगत सिंह के शैक्षणिक जीवन का अंतिम पड़ाव नेशनल कालेज लाहौर था। शहीद सरदार भगत सिंह के जीवन मे इस कालेज का विषेश महत्व है। उस समय आर्य समाज का प्रभाव इस प्रकार था।

नेशनल कालेज लाहौर के संस्थापक अनन्य देशभक्त व महान समाज सेवक लाला लाजपतराय थे। मद्रास में ऐनी बेसेंट की अध्यक्षता में हुई सभा में लाला जी ने घोषणा की थी कि आर्य समाज मेरी माता तथा वैदिक धर्म मेरा पिता है। सन 1907 में मांडले (बर्मा) से लौटने पर लाला जी ने कहा- "मुझमें संगठन करने की जो क्षमता है, वह आर्य समाज की देन है।" वे आगे कहते हैं, "मुझ पर आर्य समाज का इतना ऋण है जिससे मैं कभी उऋण नहीं हो सकता।"

इसी कालेज में शहीद सरदार भगत सिंह की मुलाकात बचपन के साथी सुखदेव, भगवती चरण बोहरा तथा यशपाल से हुई। सुखदेव व यशपाल तो आर्य समाजी परिवार से ही थे। भगवती चरण बोहरा भी आर्य समाज के विद्वान पंडित उदयवीर शास्त्री के घनिष्ठों में से थे।

देवतास्वरूप भाई परमानंद इसी कॉलेज के प्रोफेसर थे, इन्हें लाहौर षड्यंत्र केस में फाँसी की सजा हुई थी, जो बाद मे 'काला पानी' की सजा में परिवर्तित हो गई। भाई परमानंद आर्यसमाजी थे, वे कक्षा में पढ़ाते-पढ़ाते नौजवानों मे स्वतंत्रता की भावना भरते थे। जेलों में होने वाली पीड़ा व कष्टों को सहने के लिए उन्हें

मानसिक रूप से तैयार करते थे।

इसी कॉलेज के इतिहास के प्रोफेसर श्री जयचंद्र विद्यालंकार जी गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार के स्नातक थे। उन्होंने विद्यार्थियों को इतिहास को तर्क व कसौटी पर कसना सिखाया। उस समय पंजाब में श्री जयचंद्र जी ही अकेले ऐसे व्यक्ति थे जिनका संपर्क बंगाल के क्रांतिकारियों से था। श्री जयचंद्र जी के कारण ही श्री भगत सिंह की अध्ययन की जिज्ञासा पूरी हुई। श्री जयचंद्र जी से श्री भगत सिंह जी का संबंध घनिष्ट होता चला गया। श्री जयचंद्र जी के घर पर ही श्री भगत सिंह व अन्य साथियों की मुलाकात बंगाल के क्रांतिकारी श्री शचींद्र नाथ सान्याल से हुई। इस तरह श्री भगत सिंह जी को क्रांतिकारी क्षेत्र में उतरने का श्रेय श्री जय चंद्र जी को ही जाता है, बाद में श्री भगत सिंह जब दिल्ली में अर्जुन समाचार के कार्यालय गए तब भी श्री जयचंद्र जी ने ही श्री इंद्र विद्यावाचस्पति जी के नाम पत्र लिख कर दिया था। श्री इंद्र जी अमर शहीद स्वामी श्रद्धानंद जी के सुपुत्र थे स्वामी श्रद्धानंद आर्य समाज के सर्वोच्च संन्यासी थे, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार के संस्थापक तथा शुद्धि आंदोलन घर वापसी के प्रणेता थे।

लाला लाजपत राय जी ने कॉलेज के साथ ही द्वारकादास पुस्तकालय की भी स्थापना की थी। आर्य समाज के विद्वान श्री राजाराम जी शास्त्री इसके अध्यक्ष थे। भगत सिंह उनके प्रिय मित्र थे। इस पुस्तकालय पर हर समय पुलिस के गुप्तचरों की नजर रहती थी, श्री भगत सिंह को श्री शास्त्री ने इस पुस्तकालय का सदस्य बना लिया, श्री भगत सिंह जी के क्रांतिकारी बनाने में इस पुस्तकालय व श्री राजाराम शास्त्री का विशेष योगदान रहा। श्री राजाराम शास्त्री ने ही श्री भगत सिंह को बाकुनिन की 'एनार्किज्म ऐंड अदर एसेज' (अराजकतावाद तथा अन्य निबंध) नामक पुस्तक दी। इस पुस्तक पुस्तक को पढ़कर ही श्री भगत सिंह के मन में दिल्ली असेंबली में परचे फेंकने का विचार आया। उपरोक्त तथ्यों व घटनाओं से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि भगत सिंह के जीवन पर आर्य समाज का विशेष प्रभाव था। घर छोड़ने के पश्चात लाहौर से निकलकर भगत सिंह कानपुर

लाला लाजपत राय जी ने कॉलेज के साथ ही द्वारकादास पुस्तकालय की भी स्थापना की थी। आर्य समाज के विद्वान श्री राजाराम जी शास्त्री इसके अध्यक्ष थे। भगत सिंह उनके प्रिय मित्र थे। इस पुस्तकालय पर हर समय पुलिस के गुप्तचरों की नजर रहती थी, श्री भगत सिंह को श्री शास्त्री ने इस पुस्तकालय का सदस्य बना लिया, श्री भगत सिंह जी के क्रांतिकारी बनाने में इस पुस्तकालय व श्री राजाराम शास्त्री का विशेष योगदान रहा

पहुँचे। श्री गणेश शंकर विद्यार्थी जी ने इन्हें 'प्रताप' अखबार के संपादकीय विभाग में काम दे दिया।

परंतु भगत सिंह जी को यहाँ पर काम ऐसे ही नहीं मिला। श्री गणेश शंकर जी ने श्री भगत सिंह जी की विश्वसनीयता व उद्देश्य जानने के लिए आर्य विद्वान आचार्य उदयवीर शास्त्री से सम्मति माँगी। श्री शास्त्री जी का पत्र पाकर विद्यार्थी जी निश्चिंत हो गए कि उनके पास एक उदीयमान, नौजवान आया है।

सन् 1926 में लाहौर में दशहरे के मेले में किसी ने बम फेंक दिया। सन् 1927 में श्री भगत सिंह को गिरफ्तार करके जेल ले जाया गया। इस केस में श्री भगत सिंह 60 हजार रूपये की जमानत पर छोड़े गए। उस समय 60 हजार की जमानत सामान्य नहीं थी। इसमें 30 हजार रूपये लाहौर के प्रसिद्ध आर्य समाजी बैरिस्टर दुनी चंद जी ने दिए। सांडर्स वध से पहले भगत सिंह जी हरियाणा के जींद जिला वर्तमान में हांसी तहसील के खांडा खेड़ी गांव में चौधरी राजमल जैलदार जी के पास गए थे। जैलदार साहब क्षेत्र के प्रमुख आर्य नेता थे तथा भगत सिंह जी के पिता श्री किशन सिंह जी के घनिष्ठ मित्र थे। कलकत्ता (अब कोलकाता) के सेठ छाजू राम जी भी हांसी के पास के ही रहने वाले थे। श्री भगत सिंह जी बातों में ही सेठ छाजू राम का कोलकाता का पता ले आए। सांडर्स वध के बाद कलकत्ता में सुशीला दीदी ने उन्हें सेठ छाजु राम की कोठी पर ही छुपाया था। कुछ दिन भगत सिंह आर्य समाज विधानसरणी कॉलकता में ठहरे। सेठ छाजूराम जी तो आर्य समाजी थे ही। दुर्गा भाभी व भगवती चरण वोहरा जी भी आर्य समाज से प्रभावित थे। सरदार भगत सिंह का आर्य समाज से विशेष संपर्क रहा। लेख विस्तृत न हो इस दृष्टि से संक्षेप में कुछ घटनाएँ और उद्धृत करना आवश्यक समझता हूँ।

भगत सिंह आर्य समाज की अनेक संस्थाओं में समय-समय पर ठहरते थे, उनकी डायरी में यह उल्लेख मिलता है। भगत सिंह दिल्ली में आर्य समाज चावड़ी बाजार, आगरा, करकेड़ा कानपुर, गुरुकुल इंद्रप्रस्थ, फरीदाबाद (हरियाणा), गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री भगत सिंह जी के जीवन पर अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल का विशेष प्रभाव था, जो कट्टर आर्य समाजी थे। अंत में हुतात्मा भगत सिंह के मित्रवत प्रिंसिपल छबीलदास जी के नेशनल कॉलेज लाहौर के एक अंतरंग सहयोगी श्री हंसराज रहबर के शब्दों में, "श्री भगत सिंह के मूल संस्कार दादा अर्जुन सिंह, पिता किशन सिंह और माता विद्यावती की आर्य समाजी निष्ठा में से उपजे थे। उनकी शैक्षिक आधारशिला ही डीएवी स्कूल लाहौर और लाला लाजपत राय द्वारा स्थापित नेशनल कॉलेज लाहौर में रखी गई थी। संस्कृत, हिंदी, गुरु गोविंद सिंह जी, वीर शिवाजी से उन्हें विशेष प्रेम था। पंडित जयचंद्र विद्यालंकार, भाई परमानंद शचीन्द्र नाथ सान्याल जैसे भारतीय संस्कृति के उपासकों से उन्होंने क्रांति पथ की दीक्षा ली थी। आर्य समाज से उनका संबंध 1928 तक सतत बना रहा।

संदर्भ-

1. क्रांतिदूत भगत सिंह, लेखक मन्यय नाथ गुप्त
2. सिंहावलोकन, लेखक यशपाल
3. विचार वाटिका, लेखक आचार्य चम्रपति
4. युगदृष्टा भगत, लेखक वीरेंद्र संधू
5. महानता विशेषांक
6. क्रांतिकारी भाई परमानंद, लेखक धर्मवीर
7. हुतात्मा भगत सिंह, लेखक धर्मेंद्र जिज्ञासु

वीर सावरकर के व्यक्तित्व और कृतित्व ने देश भर में क्रांतिकारियों को प्रेरित किया था। इनमें एक शहीद-ए-आजम सरदार भगत सिंह भी थे। दोनों का एक-दूसरे के प्रति लगाव उनके लेखन से भी जाहिर होता है। इस पर विचार किया है विक्रम संपत ने अपनी कृति 'सावरकर: एक विवादित विरासत 1924-1966' में। ऐतिहासिक महत्व की इस कृति से एक लेख

सावरकर और भगत सिंह

रत्नागिरी में सावरकर के घर की खास पहचान उस पर हमेशा लहराता केसरिया झंडा था, परंतु युवा शहीदों की याद में वहाँ काला झंडा लहरा रहा था। भगत सिंह को फाँसी दिए जाने की खबर के तुरंत बाद सावरकर ने उनकी याद में एक कविता लिखी। कविता समूचे महाराष्ट्र शहीद की श्रृद्धांजलि सभा में गाई गई। रत्नागिरि में भी बच्चों ने एक जुलूस में कविता गाई।

हा, भगत सिंह, हाय, हा!
तुम फांसी पर झूले, ओह हमारे ही लिए!
राजगुरु तुम भी!
वीर कुमार, राष्ट्रीय युद्ध के शहीद
हाय, हा! जय जय हा!
आज की यह आह कल विजयी होगी शीश
मुकुट लौटेगा घर
तुमने उससे पूर्व ही मृत्यु का मुकुट धारण कर लिया। हम अपने हाथों में हथियार उठाएंगे तुम्हारे शस्त्र शत्रु को संहार रहे थे!
तो कौन है पापी?
कौन तुम्हारी अतुलनीय आस्था की पवित्रता को नहीं पूजता, जाओ शहीद!
हम इस घोषणा से शपथ लेते हैं। शस्त्रों के साथ युद्ध विध्वंसक है, हम तुम्हारे पीछे रहेंगे लड़ेंगे और स्वतंत्रता प्राप्त करेंगे!!
हा भगत सिंह, हाय, हा![1]

चार महीने बाद, सावरकर ने श्रद्धानंद में एक और लेख लिखकर आमजन को भगत सिंह और उनके साथियों की शहादत की याद दिलाई।[2]

सावरकर और उनके कार्यों ने देश भर में क्रांतिकारियों को प्रेरित किया था। सावरकर की 1857 की पुस्तक का चौथा संस्करण भगत सिंह ने गुप्त तरीके से भारत में प्रकाशित कराया था।[3] ऐसे भी संदर्भ मिलते हैं कि भगत सिंह लाहौर के द्वारकादास पुस्तकालय में सावरकर की अंग्रेजी जीवनी पढ़कर बहुत प्रेरित हुए थे।[4] भगत सिंह सहित, लाहौर षडयंत्र मामले (1928-31) में गिरफ्तार किए गए हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी (एचएसआरए) के सभी सदस्यों के पास से पुस्तक की प्रतियाँ मिली थीं। 1976 में दुर्गादास खन्ना के साक्षात्कार में भी इस तथ्य की पुष्टि हुई है।[5] युवा दिनों में क्रांतिकारी रहे खन्ना, आजाद भारत में पंजाब विधान परिषद के पूर्व अध्यक्ष रहे थे। उन्होंने भगत सिंह और सुखदेव के साथ अपनी पहली मुलाकात को याद किया था। संगठन के सदस्यों की भर्ती के दौरान वह खन्ना से मिले, उनके राजनीतिक रुझान का जायजा लेने के लिए उनसे राजनीति और अन्य कई विषयों पर बात की और उन्हें कुछ पुस्तकें पढ़ने की भी सलाह दी। इनमें निकोलाइ बुखारिन और एवगेनी प्रीयोब्राजेंस्की की द एबीसी ऑफ कम्युनिज्म (1920), डेनियल ब्रीन की माई फाइट फॉर आइरिश फ्रीडम (1924) और चित्रगुप्त की लाइफ ऑफ बैरिस्टर सावरकर शामिल थीं। अत:, यह साफ होता है कि एचएसआरए में आने वाले नए सदस्यों से भगत सिंह और उनके साथी न केवल रूसी क्रांति और आयरिश रिपब्लिकन आर्मी के बारे में, बल्कि विनायक दामोदर सावरकर की जीवनी भी पढ़ने की उम्मीद रखते थे।

दरअसल, अपनी जेल डायरी में भगत सिंह ने अपनी लिखाई में सावरकर की पुस्तक हिंदू पद पादशाही के छह उद्धरण नोट किए हैं। उद्धरण निम्न हैं:

1. बलिदान तभी प्यारा लगता है जब सीधा या दूर से परंतु यथोचित रूप से अनिवार्य सफलता दिखाता हो। परंतु जो बलिदान अंतत: सफल न हो, आत्मघाती होता है, मराठा युद्ध संग्राम की व्यूहरचना में उसका कोई स्थान नहीं था (हिंदू पद पादशाही, पृ.256)।
2. मराठों से लड़ना जैसे हवा से लड़ना था, पानी पर वार करने जैसा था (हिंदू पद पादशाही, पृ.254)।
3. हमारे समय का नैराश्य जिसे बिना बनाए इतिहास लिखना था, बिना दिलेर क्षमताओं और अवसरों को कर्यान्वित किए, बहादुरी के कारनामों के गीत गाने थे (हिंदू पद पादशाही, पृ.244-45)।
4. राजनीतिक पराधीनता को किसी भी समय आसानी से पलटा जा सकता है। परंतु सांस्कृतिक वर्चस्व की बेड़ियां तोड़ना कठिन होता है (हिंदू पद पादशाही,

पृ.242-43)।

5. ऐसी आजादी नहीं! जिसकी मुस्कान हम कभी न पोछेंगे। जाओ हमलावरों से कहो, डेनिशों से, 'एक युग तक तुम्हारे आश्रय से अधिक मीठा है रक्त। एक मिनट भी बेड़ियों में निद्रा लेने से!' (हिंदू पद पादशाही, पृ.219, थॉमस मूर का उद्धरण)
6. 'धर्मांतरण से बेहतर है कट जाना।' यह तत्कालीन हिंदुओं के बीच सजीव पुकार थी। परंतु रामदास उठे और कहा, 'नहीं, ऐसा नहीं। धर्मांतरित होने से बेहतर मर जाना ठीक है। न तो मरो और न ही हिंसक विधि से धर्मांतरित हो। अपितु, हिंसक शक्तियों को समाप्त करो और पवित्रता के लक्ष्य की रक्षा के लिए प्राण गंवाओं' (हिंदू पद पादशाही, पृ. 141-62)[6]

15 और 22 नवंबर 1926 को मतवाला में 'विश्व प्रेम' शीर्षक से दो बार प्रकाशित लेख में भगत सिंह ने क्रातिकारी होने के बावजूद नरम ह्रदय रखने वाले सावरकर के बारे में लिखा: 'विश्व प्रेमी है वह नायक जो किसी खूंखार विप्लवी, कट्टर अराजकतावादी को पुकारने से नहीं डरता - वही नायक सरीखे सावरकर। विश्व प्रेम की लहर में बहते हुए, वह हरी दूब पर चलते हुए यह सोचकर रुक जाते कि नरम घास उनके पैरों तले कट जाएगी।' 50 मार्च 1926 में भगत सिंह ने सावरकर और उनके लंदन के सहयोगी शहीद मदन लाल ढींगरा के बीच संबंधों पर लिखा:

स्वदेशी अभियान का असर इंग्लेंड भी पहुंचा था और श्री सावरकर ने 'इंडियन हाउस' नामक रिहाइशगाह स्थापित की थी। मदन लाल भी उसके सदस्य थे . . एक दिन, श्री सावरकर ने मदन लाल ढींगरा दूर तक टहल रहे थे। जान देने की परीक्षा लेने के लिए, सावरकर ने मदन लाल से हथेली जमीन पर रखने को कहा और एक बड़ी सुई उनकी हथेली में चुभो दी, लेकिन पंजाबी वीर ने उफ तक नहीं की। दोनों की आंखों में आंसू थे। दोनों एक दूसरे से गले मिले। ओह, कितना खूबसूरत समय था वह! कितना शानदार! उन मनोभावों के बारे में हम क्या जानते हैं, कायर लोग जो मृत्यु का विचार कर के डर जाते हैं, क्या जानेंगे कि कितने उच्च, कितने पवित्र और कितने श्रद्धेय होते हैं देश के लिए मरने वाले! अगले दिन से, ढींगरा सावरकर के इंडियन हाउस में न जाकर सर कर्जन वाइली की भारतीय विद्यार्थियों की बैठक में जाने लगे। यह देख इंडियन हाउस के लड़के बहुत उत्तेजित हुए और उन्हें गद्दार तक कहा, परंतु सावरकर ने यह कहकर उनका क्रोध शांत किया कि उन्होंने हमारी रिहाइशगाह चलाने के लिए मेहनत की है। और उनकी इसी मेहनत के कारण हमारा अभियान चल रहा है, हमें उन्हें धन्यवाद देना चाहिए! 1 जुलाई 1909 को इंपीरियल इंस्टीटयूट के जहाँगीर हॉल में बैठक थी। सर कर्जन वाइली भी वहीं गए। वह दो अन्य लोगों से बात कर रहे थे कि जब ढींगरा ने पिस्तौल निकाली। उसे हमेशा के लिए सुला दिया गया। कुछ संघर्ष के बाद ढींगरा पकड़े गए। उसके बाद की क्या कहें, दुनिया भर में शोर मचा! सब कोई ढींगरा को अपशब्द कह रहे थे। उनके पिता ने पंजाब से तार भेजा कि वह ऐसे विद्रोही, राजद्रोही और खूनी व्यक्ति को अपना बेटा नहीं मानते। भारतीयों की बड़ी बैठकें हुई। लंबे-चौड़े भाषण हुए। बड़े प्रस्ताव पारित हुए। सब कोई निंदा प्रस्ताव रूप में! परंतु ऐसे समय भी सावरकर जैसे नायक ने खुलकर उनकी पैरवी की थी। पहले पहल, उनके खिलाफ प्रस्ताव पारित न करने पर कहा कि मामला अदालत में है और उन्हें दोषी नहीं कहा जा सकता। अंतत: जब प्रस्ताव के लिए मत पड़ने लगे, बैठक के संयोजक बिपिन चंद्र पाल ने पूछा कि क्या यह सर्वसम्मति से पारित होगा तो सावरकर साहब उठे और बोलना शुरू किया। उसी समय एक अंग्रेज ने उनके मुँह पर घूँसा मारा और कहा, "देखो, अंग्रेजी घूँसा कैसे जोरदार पड़ता है!" एक हिंदुस्तानी युवा ने अंग्रेज के सिर पर छड़ी जमा दी और कहा, "देखा, हिंदुस्तानी लाठी कैसी पड़ती है!" शोर मच उठा था। बैठक बीच में ही समाप्त हो गई। प्रस्ताव पारित न हो सका। ठीक![7]

जाहिर है, दोनों क्रांतिकारियों, भगत सिंह और सावरकर के बीच आपसी सम्मान था। श्रद्धानंद में 'आतंक का असली अर्थ' नामक सावरकर के लेख को भगत सिंह और उनके साथियों ने कीर्ति में 1928 में प्रकाशित किया था।[8] भगत सिंह और उनके साथियों से समर्थन जताने के लिए सावरकर ने 'सशस्त्र परंतु आततायी' नामक लेख भी लिखा था। बम के दर्शन पर मिलता-जुलता लेख भगत सिंह की एचएसआरए और भगवती चरण बोहरा ने 26 जनवरी 1930 को प्रकाशित किया था।[9] जेल में लेख को भगत सिंह ने अंतिम रूप दिया था और उसे देश भर में वितरित किया गया।

संदर्भ

1. सौजन्य: रणजीत सावरकर एवं स्वातंत्र्यवीर सावरकर राष्ट्रीय स्मारक, मुंबई
2. वाई. डी. फड़के, शोध सावरकरांचा, पुणे: श्री विद्या प्रकाशन, 1984, पृ. 123-31
3. वी.डी. सावरकर, द इंडियन वॉर ऑफ इंडिपेंडेंस में जी एम. जोशी,द स्टोरी ऑफ दिस हिस्ट्री, 1857, बंबई: फीनिक्स पब्लिकेशंस, 1947, पृ. xvi.
4. हंसराज रहबर, भगत सिंह ऐंड हिज थॉट, दिल्ली, मानक पब्लिकेशंस, 1990, पृ. 90
5. नेहरू मेमोरियल म्यूजियम ऐंड लाइब्रेरी (एनएमएमएल), नई दिल्ली के ओरल आर्काइव्ज इंटरव्यू ट्रांस्क्रिप्ट में अभिलेखित
6. भगत सिंह, मालविंदर सिंह जीत वराइच (सं.), जेल नोटबुक ऑफ शहीद भगत सिंह, मोहाली: यूनिस्टार बुक्स, 2016, पृ. 300
7. सत्यम (सं.), भगत सिंह और उनके साथियों के संपूर्ण उपलब्ध दस्तावेज, लखनऊ: राहुल फाउंडेशन, 2006, पृ. 93
8. वही, पृ. 166-68.
9. वही, पृ. 243-48.

साभार: विक्रम संपत, 'सावरकर: एक विवादित विरासत 1924-1966', पेंग्विन, पृ. 138-141

डॉ. राधा कुमारी

भगत सिंह और शहादत का संकल्प

"भगत सिंह केवल एक शहीद भर नहीं हैं। वह आज हजारों लोगों के लिए शहीद-ए-आजम हैं।"[1] लाहौर के एक साप्ताहिक समाचार पत्र 'द पीपुल' ने भगत सिंह की फाँसी के बाद उनसे जुड़ी घटनाओं का सार-संक्षेप प्रस्तुत किया। बानबे साल बाद, *शहीद* शब्द सुनते ही मन में जो नाम सबसे पहले आता है, वह है भगत सिंह; उन्होंने अपनी मौत को शालीनता और साहस के साथ गले लगाया और अमर हो गए। सुभाष चंद्र बोस ने भगत सिंह को 'एक व्यक्त नहीं, बल्कि एक प्रतीक बताया, जिन्होंने उस विद्रोह की भावना का प्रदर्शन किया जो पूरे देश में छा गई थी।'[2]

लाहौर षड्यंत्र मामले में ब्रिटिश सरकार ने भगत सिंह को उनके क्रांतिकारी साथियों राजगुरु और सुखदेव के साथ 23 मार्च, 1931 को फाँसी पर लटका दिया। वह जीवनपर्यंत अपने देश के लिए शहीद होने का सपना देखते रहे। उनके सभी कथनों और कार्यों में उनकी एकनिष्ठता की झलक दिखाई देती है, उनके मन में विचार के लिए कोई और विकल्प नहीं है। वह अपने देशवासियों के लिए जीते रहे और अद्भुत साहस के साथ उनके लिए अपना जीवन होम कर दिया। उपसर्ग *शहीद* उनके नाम का अविभाज्य अंग बन गया है।

भगत सिंह के लिए, जिन्होंने मौत के भय पर विजय प्राप्त कर ली थी, शहादत कोई दंड नहीं, बल्कि देशभक्ति का सर्वोच्च पुरस्कार थी

'भगत' से 'शहीद भगत सिंह' तक का सफर

भगत सिंह बचपन से ही निर्भीक थे। उनके खून में कुर्बानी की भावना दौड़ती रहती थी। उनका संबंध मातृभूमि के लिए पीड़ा उठाने और बलिदान देने वाले गौरवशाली देशभक्तों के परिवार से था। जब उनके पिता के मित्र और कांग्रेस कार्यकर्ता मेहता आनंद किशोर ने चार साल के भगत सिंह से पूछा कि वह अपने खेत में क्या बो रहा है, तो उन्होंने उत्तर दिया - "मैं अपने देश को अंग्रेजों के पंजे से मुक्त कराने और अपने चाचा को वापस घर लाने के लिए बंदूकें बो रहा हूँ।"[3]

भगत सिंह के बचपन के एक उदाहरण से पता चलता है कि उनकी स्नायुओं में किस वंश का लहू दौड़ रहा था। उनके दादा अर्जुन सिंह, जो एक उत्साही आर्य समाजी थे, ने अपने पोतों जगत सिंह और भगत सिंह के *यज्ञोपवीत* संस्कार के दिन उन्हें राष्ट्र की सेवा में समर्पित करने की घोषणा की। भगत सिंह की भतीजी, वीरेंद्र सिंधु, गर्व से अपने परदादा की भावना को याद करते हुए कहती हैं:

"जिस व्यक्ति के एक बेटे स्वर्ण सिंह की जेल में घोर यातना के कारण मौत हो जाए, एक बेटे को देश निकाला दे दिया जाए, एक को कारागार में रखा जाए, फिर भी वह अपने पोतों (जगत सिंह और भगत सिंह) को सार्वजनिक रूप से राष्ट्र के हित में समर्पित करने का जज्बा रखता हो, उसकी देशभक्ति के प्रति जो कुछ भी कहा जाए, कम होगा।"[4]

सिंधु ने पूरे परिवार के बलिदानों का विस्तृत वर्णन किया है। किंतु, वह शहादत के प्रति भगत सिंह के दुराग्रह का विशेष उल्लेख करती हैं।

"भगत सिंह ने आग के लिए इधर-उधर नहीं देखा, बल्कि अपने जीवन में आग भर ली, एक झोंका तैयार किया और आग की लपटों को उस ऊँचाई तक पहुँचा दिया जहाँ से उनकी ज्वाला पूरे देश में फैल गई; देश के हर आंगन ने अग्निकुंड का रूप ले लिया।"[5]

जैसा कि भगत सिंह के कई आलेखों से ज्ञात होता है, उनका मानना है कि क्रांतिकारी और दार्शनिक परिस्थितियों से उत्पन्न होते हैं। इस दृष्टि से उस समय की भारत की घटनाएं

भी महत्वपूर्ण हैं; उनके प्रति भगत सिंह का संवेदनशील मन ऐसी ही प्रतिक्रिया दे सकता था। जलियांवाला बाग नरसंहार ने भगत सिंह के कोमल मन को गहरा आघात पहुंचाया। इस राष्ट्रीय आपदा से मर्माहत वह एक बोतल में बाग की लहू से सनी मिट्टी भरकर पूजा के लिए ले आए। बारह वर्ष की अपनी छोटी आयु में उन्होंने मन ही मन संकल्प लिया -

"नहीं, नहीं, अब से हम गोली नहीं खाएंगे, बल्कि उन अंग्रेजों को गोली मार देंगे, जिन्होंने हमारे बेकसूर लोगों का लहू बहाया। जिन्होंने हमें गुलाम बना रखा है, हम उन्हें खत्म कर देंगे। मैं इस मिट्टी की सौगंध लेता हूँ। मैं उन शहीदों की कसम खाता हूँ। उनकी मौत का बदला मैं लेकर रहूँगा।[6]

राष्ट्र पर जान न्योछावर करने के उनके संकल्प को लाहौर में नेशनल कॉलेज के उनके शिक्षकों, खास तौर पर भाई परमानंद और जयचंद्र विद्यालंकार ने हवा दी। भाई परमानंद उनके आदर्श थे, जिन्हें पहले लाहौर षड्यंत्र मामले में मृत्युदंड की सजा सुनई गई, पर बाद में आजीवन कारावास में बदल दिया गया। इतिहासकार जयचंद्र विद्यालंकार का बंगाली क्रांतिकारियों से संपर्क था। उन्होंने भगत सिंह को सचींद्र नाथ सान्याल से मिलाया। उनके अंतरंग मित्र जयदेव गुप्ता ने जब उनके विवाह नहीं करने का कारण जानना चाहा, तब उन्होंने जो उत्तर दिया वह सोलह वर्ष की आयु में उनके संकल्प का प्रतीक था। उन्होंने कहा कि जब परिवार में पहले से ही रोने, विलाप करने के लिए दो विधवाएँ हों, तो फिर और विधवाएँ क्यों। इस उत्तर में उनके अंतिम मकसद के प्रति उनके मन की स्पष्टता की झलक साफ दिखाई देती है।

भगत सिंह ने कुछ आलेख लिखे, जो हालांकि छद्म नाम से हैं पर भारत के युवाओं के लिए प्रेरणादायक हैं और मातृभूमि के प्रति उनमें प्रेम की भावना का संचार करते हैं। 'मतवाला' में प्रकाशित अपने ऐसे ही एक आलेख में वह लिखते हैं :

"मातृभूमि की सच्ची संतान गोविंद सिंह की तरह आपको रणभूमि में उतरना है राणा प्रताप की तरह आपको जीवन भर संघर्ष करना होगा... अपनी मातृभूमि को मुक्त कराने के लिए अपना बलिदान दें। अपनी माँ को गुलामी की जंजीरों से छुड़ाने के लिए अपना सारा जीवन अंडमान में बिताने को तैयार रहें। सिसकती-सुबकती माँ को जिंदा रखने के लिए मरने को तैयार रहें।"[7]

भगत सिंह अपने समय के क्रांतिकारियों की शहादत की कहानियों में गहरी रुचि लिया करते थे। 'चाँद', 'कीर्ति' और 'प्रताप' में प्रकाशित उनके ज्यादातर आलेख शहादत पर आधारित हैं। वस्तुत:, 'फाँसी' विशेषांक में संकलित शहीदों की लगभग सभी लघु जीवनियाँ उन्होंने और उनके सहयोगियों ने ही लिखी थीं।

भगत सिंह गदर आंदोलन के प्राय: सबसे युवा क्रांतिकारी करतार सिंह सराभा से अत्यधिक प्रभावित थे। सराभा की आजीवन कारावास के स्थान पर मृत्युदंड की कामना ने भागत सिंह को परम बलिदान के लिए प्रेरित किया।[8] भगत सिंह की मां के अनुसार वह सराभा की तस्वीर हमेशा अपनी जेब में रखा करते थे। फाँसी पर जाते मदन लाल धींगरा के शब्द जीवनपर्यंत भगत सिंह के कानों में गूँजते रहे।

"एक हिंदू के रूप में, मैं समझता हूँ कि मेरे देश के साथ अन्याय भगवान का अपमान है। उसका हित श्री राम का हित है, उसकी सेवा श्री कृष्ण की सेवा है। अभी भारत में केवल एक ही सबक सीखने की जरूरत है कि मरें कैसे, और इसे समझने का एकमात्र रास्ता कि हम स्वयं मरें। इसलिए, मैं मरता हूँ, और मुझ अपनी शहादत पर खुशी है।"[9]

भगत सिंह को पढ़ने का बड़ा शौक था, वह जेल में होते या जेल से बाहर, अपना अधिकांश समय देशभक्ति और क्रांति का साहित्य पढ़ने में बिताते। वह तिलक की *गीता रहस्य* और सावरकर की वार *ऑफ इंडियन इंडिपेंडेंस* से लेकर बाकुनिन के गॉड एंड द स्टेट और फ्रांसीसी विप्लवकारी वेलंट की *एनार्किज्म एंड अदर एसेज* जैसी किताबें पढ़ा करते। गोर्की की मदर, सिंक्लेयर के *जंगल*, विक्टर ह्यूगो के *नाइंटी थ्री* आदि जैसी उनकी पसंदीदा पुस्तकों ने उन्हें शहादत का रास्ता चुनने की प्रेरणा दी। उन्होंने मार्क्स, लेनिन, त्रॉत्स्की और कई अन्य लोगों के साहित्य का अध्ययन किया, जिन्होंने अपने-अपने देश में क्रांति का ध्वज सफलतापूर्वक फहराया था।

उनके मन पर फ्रांसीसी विप्लवकारी अगस्टे वेलंट की एक गहरी छाप थी। वर्ष 1893 में वेलंट ने फ्रांस की संसद में बम फेंका था, उसने अपनी गिरफ्तारी दी, न्यायालय में एक लंबा बयान दिया, और कहा कि वह बचाव नहीं चाहता। वस्तुत:, वेलंट की तरह उन्होंने और उनके साथियों ने विधान सभा में बम फेंकने की योजना बनाई और अंत में उसे अंजाम दिया। उन्होंने वेलंट की 'बहरों को सुनाने' और विरोध जताने की शैली अपनाई। अपनी जेल डायरी में वह संबद्ध उद्धरणों को लिख भी लिया करते थे। अपनी फाँसी से कुछ महीने पहले, उन्होंने थॉमस जेफरसन का यह उद्धरण लिखा - "द ट्री ऑफ लिबर्टी मस्ट बी रिफ्रेश्ड फ्रॉम टाइम टु टाइम विद द ब्लड ऑफ पैट्रियट्स एंड टाइरेंट्स (आजादी के पेड़ को समय समय पर देशभक्तों व आततायियों के लहू से तरोताजा किया जाना चाहिए)।"[10] यह उनकी पार्टी के सूक्ति वाक्य जैसा था, "वह शहीद का लहू है, जिसे पीकर आजादी का नन्हा पौधा पनपता है।"[11]

मानवतावादी शहीद या दिग्भ्रमित देशभक्त?

क्रांतिकारियों के प्रति आम राय यह है कि उनका लक्ष्य सर्वोपरि होता है, उसके सामने मानव जीवन की चिंता गौण होती है। इस धारणा के विपरीत, भगत सिंह क्रांतिकारी साधनों की मर्यादा के प्रति सचेत थे और उनके अनुचित व अनावश्यक उपयोग को उन्होंने कभी उचित नहीं ठहराया। एक आदमी की मौत के रूप में सॉन्डर्स की हत्या के प्रति उन्होंने और उनकी पार्टी ने दुख भी प्रकट किया, किंतु फिर इसे इसलिए उचित ठहराया कि वह अधर्मी तंत्र का एक अंग था। शिव वर्मा का मानना है कि सांडर्स की हत्या के बाद हालांकि भगत सिंह ने लाला लाजपत राय की हत्या का बदला लेने के लिए अपराधी की हत्या करने का प्रस्ताव रखा था, पर वह कई दिनों तक उत्तेजित रहे। वह समस्त मानव जाति को सुखी बनाना चाहते थे, इसलिए मानव जीवन को लेकर उनकी चिंता स्पष्ट थी।[12] सत्र न्यायालय में जो बयान उन्होंने दिया, उसमें क्रांतिकारी आंदोलन के लक्ष्यों और उद्देश्यों तथा मानवता के प्रति उनके प्रेम की झलक स्पष्ट दिखाई देती है।

"हम मानवता के प्रति अपने प्रेम में किसी से कम नहीं हैं। किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष की भावना नहीं, बल्कि हम मानव जीवन को शब्दों से परे पवित्र मानते हैं। न ही हम कायराना अत्याचार, और इस प्रकार देश का अपमान करने वाले अपराधी हैं।" वह जोर देकर कहते हैं, "हम फिर कहते हैं कि मानव जीवन को हम शब्दों से परे पवित्र मानते हैं और किसी और को आघात पहुंचाने की बजाय हम जल्द ही अपना जीवन मानवता की सेवा में अर्पित कर देंगे। साम्राज्यवादी सेना के किराए के सैनिकों, जिन्हें बिना किसी अनुताप के मारने की शिक्षा दी जाती है, के विपरीत हम मानव जीवन का सम्मान, और यथासंभव उसकी रक्षा करने का प्रयास करते हैं...''[13]

एक आंदोलन में उन्हें हिंसक तरीकों की हद का अहसास हुआ। जेल में लिखे अपने एक आलेख में, उन्होंने घोर आवश्यकता की स्थिति में बल के प्रयोग को उचित ठहराया : अहिंसा एक नीति के रूप में सभी जन आंदोलनों के लिए अपरिहार्य।[14]

'मॉडर्न रिव्यू' के संपादक को अपने नारे 'लांग लिव रिवॉल्यूशन (क्रांति जारी रहे) का अर्थ बताते हुए भगत सिंह ने लिखा,"... इस वाक्यांश का अर्थ यह नहीं है कि खूनी संघर्ष हमेशा जारी रहे और कुछ भी हमेशा या थोड़ी देर के लिए भी रुकना नहीं चाहिए... क्रांति में खूनी संघर्ष शामिल हो ही, यह कतई जरूरी नहीं है..."[15] उन्हें इस बात का दुख था कि अपने निहित स्वार्थ के वशीभूत जिन लोगों ने इस शब्द का उपयोग किया, उन्होंने एक रक्तरंजित संत्रास का संकेत दिया, इस विचार से यह शब्द उनके लिए पवित्र था। लोगों के जीवन में बेहतर बदलाव लाना उनका एकमात्र उद्देश्य था।

भगत सिंह के वकील आसफ अली का मानना है कि भगत सिंह प्राय: सर्वाधिक सज्जन और स्वभाव में सर्वाधिक स्नेहशील थे - एक कठोर और रक्तपिपासु क्रांतिकारी के विपरीत।[16]

मृत्यु के कुछ दिनों पूर्व अपने भाई कुलतार सिंह को लिखे अपने पत्र में उन्होंने किसी भी अन्य व्यक्ति के समान जीवित रहने की स्वाभाविक इच्छा जताई थी। उन्होंने लिखा कि जीवन के प्रति उनमें अगाध आकर्षण है, किंतु वह समस्त मानव जाति के लिए एक स्वतंत्र जीवन चाहते हैं।

शहादत क्यों?

मृत्युदंड, जिसके प्रति भगत सिंह पूर्णत: आश्वस्त थे, के अंतिम फैसले से लगभग एक सप्ताह पहले अपने आलेख, 'मैं नास्तिक क्यों हूँ', में उन्होंने अपनी भावनाएँ इस प्रकार व्यक्त की थीं, "यहाँ या भविष्य में किसी स्वार्थी प्रयोजन अथवा इच्छा के बिना मैंने अपना जीवन, पूर्णत: नि:स्वार्थ भाव से, स्वतंत्रता के हित में अर्पित कर दिया है क्योंकि मैं कुछ और नहीं कर सकता।"[17] इस आलेख में एक ओर जहाँ भगत सिंह की उच्च प्रज्ञा, विचारों की स्पष्टता और शहीद होने के उनके दृढ़ संकल्प की झलक दिखाई देती है, तो वहीं दूसरी तरफ इसमें नि:स्वार्थ भाव से राष्ट्र की सेवा की उनकी ललक भी स्पष्ट देखी जा सकती है। इसी लेख में वह आगे लिखते हैं :

"कोई आस्तिक हिंदू एक राजा के रूप में फिर से जन्म लेने की आशा कर सकता है, कोई मुसलमान या कोई ईसाई स्वर्ग में भोग-विलास और अपने कष्टों व बलिदानों के लिए मिलने वाले पुरस्कार का सपना संजो सकता है। पर मैं क्या उम्मीद करूं?"[18]

शहादत का समय नजदीक आते-आते भगत सिंह का कद इतना ऊंचा हो गया था कि अब वापसी की कोई गुंजाइश नहीं रह गई थी। और यह बात वह अच्छी तरह जानते थे। दूसरे लाहौर षड्यंत्र के कैदियों के समक्ष जीने की इच्छा (इस शर्त के साथ कि उनकी स्वतंत्रता पर कोई अंकुश न हो) खुलकर व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा,

"...क्रांतिकारी पार्टी के सिद्धांतों और त्यागों ने मुझे एक उच्च स्थान दिया है। यह स्थान इतना ऊँचा है कि एक जीवित प्राणी के रूप में मैं इसके साथ न्याय नहीं कर सकता। जनता को मेरी कमजोरियों का ज्ञान नहीं है। यदि मैं फाँसी से नहीं हुई, तो हर किसी को इन कमजोरियों का पता चल जाएगा। इस प्रकार, क्रांति का प्रतीक तो मुरझा जाएगा और खत्म भी हो जाएगा, किंतु यदि मृत्यु के समय मेरे होठों पर मुस्कान हो, तो भारतीय माताएँ अपने बच्चों को भगत सिंह बनाना चाहेंगी और इस तरह स्वतंत्रता के दुर्जेय सेनानियों की संख्या इतनी बढ़ जाएगी कि साम्राज्यवाद की शैतानी ताकतें क्रांति की राह को रोक नहीं पाएंगी।"[19]

भगत सिंह चाहते थे कि मानव जाति के प्रति युवाओं में नि:स्वार्थ सेवा की इस भावना का संचार हो। न्यायालय में उनके सभी बयानों में, अधिनियम के पीछे अपने उद्देश्य को स्पष्ट करना उनका एकमात्र सरोकार था; उन्होंने सजा की कभी परवाह नहीं की। वह अपने यौवन को बलि वेदी पर हवि के रूप में अर्पित करने को हमेशा तैयार रहते; मातृभूमि की स्वतंत्रता हेतु उनके लिए कोई बलिदान बड़ा नहीं था। शहादत में भगत सिंह की आस्था को बढ़ती उनकी लोकप्रियता ने पूरी तरह सच सिद्ध कर दिया।

करीब आता शहादत का पल (*कहीं फाँसी न रुक जाए*)

भगत सिंह शहीद होने के प्रति इतने दृढ़ थे कि उनके बचाव के सभी प्रयासों को उन्होंने स्वयं नाकाम कर दिया। जुलाई 1930 में भगत सिंह की बोरस्टल जेल यात्रा के दौरान हुई अपनी बातचीत को स्मरण करते हुए शिव वर्मा ने मौत को ललकारने के उनके साहस का उल्लेख किया है। अपने लिए मृत्युदंड के आदेश का अनुमान जताते हुए, भगत सिंह ने अपनी सामान्य शैली में कहा,

"यह देशभक्ति का सर्वोच्च पुरस्कार है, और मुझे गर्व है कि मैं इसे प्राप्त करने जा रहा हूँ। ...जीवित भगत सिंह की तुलना में मृत भगत सिंह ब्रिटिश आक्रांता शासकों के लिए अधिक खतरनाक होगा। मेरी फाँसी के बाद, मेरे क्रांतिकारी विचारों की खुशबू हमारी इस खूबसूरत देश के वायुमंडल में फैल जाएगी... मैं उस दिन की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा हूँ जब मुझे देश के प्रति अपनी सेवाओं और लोगों के प्रति अपने प्रेम का सर्वोच्च पुरस्कार मिलेगा।"[20]

पुत्र स्नेह से विवश भगत सिंह के पिता ने न्यायालय के अंतिम फैसले से पहले वाइसराय से यह तर्क देते हुए अंतिम अपील की कि सांडर्स की हत्या के दिन उनका बेटा लाहौर में मौजूद नहीं था। यह जानकर, भगत सिंह इतने असंतुष्ट हो गए कि उन्होंने 4 अक्टूबर 1930 को अपने पिता को नाराजगी जताते हुए हुए एक सख्त पत्र लिखा।

भगत सिंह के क्रांतिकारी मित्र बिजॉय कुमार सिन्हा ने प्रिवी काउंसिल में जब

पं. मोती लाल नेहरू माफी की अपील दाखिल करने वाले थे, उस समय मृत्युदंड को बदलने की भगत सिंह के पिता की अपील के प्रति उनकी आशंका का वर्णन किया है। इसका पता लगते ही भगत सिंह ने कहा, "भाई, ऐसा न हो कि फाँसी रुक जाए।" वह यह सोचकर अत्यंत भयभीत थे कि वह शहीद होने के अवसर से वंचित रह जाएंगे। सिन्हा कहते हैं कि भगत सिंह मृत्यु को गले लगाने को लालायित थे। चारों ओर से पड़ने वाले भारी दबाव के बीच मृत्युदंड को कम करने की संभावना दिखाई दे रही थी। इन परिस्थितियों में यह सोचकर भगत सिंह बेचैन हो उठे कि उनका लंबे समय से संजोया सपना कहीं अधूरा न रह जाए।[21]

शहादत से कुछ दिन पहले लाहौर सेंट्रल जेल में अपने साथी जयदेव कपूर से अपनी अंतिम भेंट में भगत सिंह ने कहा था, यदि मैं कुर्बानी देकर पूरे देश में 'इंकलाब जिंदाबाद' के नारे का संचार कर सकूं, तो मैं समझूंगा कि मुझे मेरा पुरस्कार मिल गया... आज अपनी मृत्यु-कक्ष की मोटी दीवारों के पीछे कैद होने के बावजूद मैं अपने करोड़ों देशवासियों को नारा लगाते हुए साफ-साफ सुन सकता हूँ... मुझे विश्वास है कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध हमारे मुक्ति संग्राम को प्रेरित करने के लिए यह नारा जारी रहेगा।[22]

भगत सिंह की 'दया याचिका' के चलते उनके बचाव के सभी प्रयास विफल रहे। ने उन्हें बचाने के सभी प्रयासों पर अंतिम प्रहार किया। ब्रिटिश कानून व्यवस्था के ढोंग को उजागर करते और चुनौती देते हुए उन्होंने पंजाब के राज्यपाल को एक पत्र लिखा "...आपके न्यायालय के निर्णय के अनुसार, हमने युद्ध छेड़ा और इसीलिए युद्धबंदी हैं। और हम मांग करते हैं कि हमारे साथ ऐसा ही व्यवहार हो, यानी हमारी मांग है कि हमें फाँसी देने की बजाय गोली मारी जाए..."[23] अपने दो प्रिय और बहादुर क्रांतिकारी मित्रों (सुखदेव व राजगुरु) के साथ भगत सिंह ने एक शहीद की अपनी 'प्रिय' गौरवमयी मृत्यु को गले लगा लिया। फाँसी से पहले उन वीर सपूतों ने जो अंतिम गीत गाया उसमें उनकी देशभक्ति की झलक साफ दिखाई देती है।

"दिल से निकलेगी न मर कर भी वतन की उल्फत, मेरी मट्टी से भी खुशबू-ए-वफा आएगी" (मौत मेरी खाक को धूल में चाहे मिला दे वतन से मेरी उल्फत खत्म कभी हो नहीं सकती खुशबू उस उल्फत की छलकती रहेगी रहती दुनिया तक सोते की मानिंद मेरे दिल की गहराई से)[24]

हालांकि भगत सिंह की कार्य-प्रणाली से महात्मा गांधी सहमत नहीं थे, पर उनकी शहादत के बाद उन्होंने स्वीकार किया, "याद नहीं, किसी व्यक्ति के जीवन में इतना रोमांस रहा हो, जितना कि भगत सिंह के जीवन में था।"[25] वहीं, 29 अप्रैल 1931 को *नवजीवन* में गांधी ने लिखा कि भगत सिंह ने हिंसा के धर्म को कभी स्वीकार नहीं किया। मृत्यु के भय पर उन्होंने विजय प्राप्त कर ली थी। आईए, हम उनकी वीरता के लिए उन्हें हजार बार नमन करें।[26]

भगत सिंह के लिए, जिन्होंने मृत्यु के भय पर विजय प्राप्त कर ली थी, शहादत कोई दंड नहीं थी, न ही देशभक्ति का कोई सर्वोच्च पुरस्कार।

संदर्भ :

1. द पीपल, 29 मार्च, 1931, सिंह चंद्रपाल, भगत सिंह रीविजिटेड : हिस्ट्रियोग्राफी, बायॉग्राफी, एंड आइडियोलॉजी ऑव दि ग्रेट मार्टायर, मूल, नई दिल्ली 2011, पृ. 216
2. सिंह चंद्रपाल, पूर्वोक्त, पृ. 216
3. लाल चमन, सं. शहीद भगत सिंह : दस्तावेजों के आईने में, सं. चमन लाल, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 2007, पृ. 5-6
4. सिंह चंद्रपाल, पूर्वोक्त, पृ. 86
5. https://archive.org/stream/KYYq_yuga-drashta-bhagat-singh-by-virendra-sindhu-bharatiya-gyanpith-prakashan 13.01.2023
6. शर्मा महेश, दि लाइफ एंड टाइम्सं ऑफ भगत सिंह, ओशन बुक्स प्राइवेट लि., नई दिल्ली, पृ. 36
7. लाल चमन, भगत सिंह के संपूर्ण दस्तावेज, 2004, आधार प्रकाशन, पंचकुला, पृ. 49-51
8. सिंह चंद्रपाल, पूर्वोक्त, पृ. 91
9. कीर्ति, मार्च 1928, उद्धृत, लाल चमन, पूर्वोक्त, पृ. 127
10. सिंह भगत, भगत सिंह्स जेल नोटबुक (भगत सिंह की जेल नोटबुक), उद्धृत, सिंह, चंद्रपाल, पूर्वोक्त, पृ. 206
11. https://www.sankalpindia.net/book/manifesto-hindustan-socialist-republican-association 08.02.2023
12. सिंह, चंद्रपाल, पूर्वोक्त, पृ. 198
13. वर्मा एस., सं. सेलेक्टेड राइटिंग्स ऑफ शहीद भगत सिंह, समाजवादी साहित्य सदन, कानपुर, 1996, पृ. 66
14. गुप्ता/ डी. एन., सं., भगत सिंह : सेलेक्टेड स्पीचेज एंड राइटिंग्स, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 2010, पृ. 54
15. https://www.marxists.org/archive/bhagat-singh/1929/12/24.htm#:~:text=Upton%20Sinclair%2C%20the%20well%20known, even%20for%20a%20short%20while. 8. 02. 2023
16. अली ए., एन आउटस्टैंडिंग मेकर ऑफ हिस्ट्री, उद्धृत, सिंह चंद्रपाल, पूर्वोक्त, पृ. 185
17. सिंह भगत, ह्वाइ आई एम एन एथीस्ट https://ia801400.us.archive.org/4/items/why-i-am-an-atheist/Why%20I%20am%20an%20Atheist_text.pdf 20.01.2023
18. वही
19. गुप्ता, मन्मथ नाथ, भगत सिंह एंड हिज टाइम्स, लिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1977, उद्धृत, सिंह चंद्रपाल, पूर्वोक्त, पृ. 216
20. वर्मा शिव, पूर्वोक्त, पृ. 44-45
21. सिन्हा बी. के. ही मार्च्ड टु डेथ, 'मेनस्ट्रीम' मार्च 21, 1964, उद्धृत सिंह चंद्रपाल, पूर्वोक्त, पृ. 213
22. वराइच एम.एस. एवं सिधू जी.एस. सं. हैंगिंग ऑफ भगत सिंह, यूनीस्टार बुक्स प्रा. लि., चंडीगढ़, पृ. 9
23. https://www.marxists.org/archive/bhagat-singh/1931/x01/x01.htm18.01.2023
24. सिंह चंद्रपाल, पूर्वोक्त, पृ. 215
25. दि ट्रिब्यून, 29 मार्च, 1931, उद्धृत, सिंह चंद्रपाल, पूर्वोक्त, पृ. 216
26. सीडब्ल्यूएमजी, खंड 45, पृ. 359-360

प्रदीप देसवाल

महात्मा गांधी और भगत सिंह कितने पास, कितने दूर

भारत के स्वतंत्रता संघर्ष के दो छोर हैं- गांधी जी और भगत सिंह। दोनों के आदर्श समान हैं लेकिन मार्ग बिलकुल भिन्न। इतिहास के हवाले से एक सघन विश्लेषण

महात्मा गांधी और भगत सिंह भारत के स्वतंत्रता संग्राम के ऐसे योद्धा हैं जो स्वतंत्रता के 75 वर्ष बाद भी प्रासंगिक बने हुए हैं। जिन महान आदर्शों के प्रति वे समर्पित थे, जिस श्रेष्ठ समाज के सृजन का स्वप्न लिए वे चले थे, वह अभी भी अधूरा है। गांधीजी भारत को स्वतंत्र कराना चाहते थे ताकि देश में राम-राज्य की स्थापना हो सके और भगत सिंह फाँसी चढ़े ताकि अंग्रेजी साम्राज्य को समाप्त कर भारत एक ऐसे शोषणमुक्त राष्ट्र के रूप में स्थापित हो जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित हो। दोनों ही मानवता के कल्याण के लिए प्रतिबद्ध थे। दोनों के आदर्श में बहुत समानता भी थी और गहरा विरोधाभास भी। एक अहिंसादूत था तो दूसरा क्रांतिदूत। एक ने प्रथम विश्वयुद्ध में अंग्रेजों की ओर से लड़ने के लिए सैनिक भर्ती कराए और फिर भी अहिंसा का पुजारी कहलाया, दूसरे ने एक अंग्रेज अफसर का वध किया तो अंग्रेजों के साथ-साथ भारत के भी लगभग सभी नेताओं की निंदा का पात्र बना। ये बात और है कि वह हिंसा का उपासक नहीं था और जनांदोलनों के लिए अहिंसा को अपरिहार्य मानता था।

यदि बात करें महात्मा गांधी की तो आज वे समस्त विश्व में भारत की पहचान हैं। न्यूयॉर्क में संयुक्त राष्ट्र के मुख्यालय, जेनेवा में संयुक्त राष्ट्र के यूरोपीय मुख्यालय और लंदन में पार्लियामेंट स्क्वेयर पर लगी उनकी प्रतिमाएँ उनकी वैश्विक लोकप्रियता के जीवंत हस्ताक्षर हैं। मार्टिन लूथर किंग जूनियर और नेल्सन मंडेला सहित अनेक वैश्विक नेताओं के लिए गांधीजी प्रेरणास्रोत रहे हैं। 2 अक्टूबर को उनके जन्मदिन पर भारत में राष्ट्रीय अवकाश रहता है और करेंसी नोट्स पर उनका चित्र है। जिस व्यक्ति ने सारा जीवन राष्ट्र व मानव सेवा को समर्पित कर दिया था उनके नाम के साथ कुछ विवाद भी जुड़े हैं। आरोप यह भी लगता है कि उन्होंने भगत सिंह को फाँसी से बचाने के लिए गंभीर और ईमानदार प्रयास नहीं किए।

दूसरी ओर भगत सिंह हैं जो गांधीजी से 38 साल छोटे थे और केवल 23 वर्ष की आयु में फाँसी चढ़कर शहीद हो गए थे। इतिहास पर स्थाई छाप छोड़ने के लिए 23 वर्ष का जीवन किसी भी व्यक्ति के लिए अत्यंत कम है। लेकिन भगत सिंह इतनी कम उम्र में ही किंवदंती बन गए थे। डॉ. पट्टाभि सीतारमैया की मानें तो उन दिनों भगत सिंह की लोकप्रियता सारे भारत में गांधीजी के समकक्ष थी।[1] जवाहरलाल नेहरू भी हैरान थे कि उन दिनों प्रत्येक व्यक्ति भगत सिंह के बारे में ही क्यों सोच रहा था और उनकी लोकप्रियता अद्भुत थी।[2] नेताजी सुभाष मानते हैं कि भगत सिंह युवाओं में नई जागृति के प्रतीक थे।[3]

अनेक भाषाओं में सैकड़ों पुस्तकें भगत सिंह के बारे में लिखी गई हैं। अनेक फिल्में बन चुकी हैं। वर्ष 2008 में 'इंडिया टुडे' पत्रिका ने 60 महानतम भारतीयों का ऑनलाइन सर्वे करवाया जिसमें 37% मतों के साथ भगत सिंह पहले, 27% मतों के साथ नेताजी सुभाष चंद्र बोस दूसरे व 13% मतों के साथ गांधीजी तीसरे स्थान पर रहे। हालांकि, ऐसे सर्वेक्षण पूरी तरह सही नहीं कहे जा सकते और किसी अन्य सर्वेक्षण में नतीजे बिलकुल अलग भी आ सकते हैं, फिर भी इतना अनुमान तो लगाया जा ही सकता है कि आज की पीढ़ी भी भगत सिंह में अपना आदर्श नायक देखती है। 28 सितंबर को उनका जन्मदिन हो या 23 मार्च को बलिदान दिवस, देश भर में सैंकड़ों छोटे-बड़े कार्यक्रमों का आयोजन होता है और इनमें से अधिकांश कार्यक्रम सरकारों की

कृपा पर नहीं बल्कि जनसाधारण द्वारा खुद आयोजित किए जाते हैं।

घर-घर में दीवारों पर भगत सिंह के चित्र सजे मिलते हैं। प्रोफेसर क्रिस्टोफर पिनी कहते हैं कि भारत में भगत सिंह की मूर्तियाँ महात्मा गांधी की मूर्तियों से ज्यादा प्रचलित हैं।[4] किंतु भारतीय इतिहासकारों की उदासीनता से हैरान पिनी लिखते हैं कि भारतीय दृश्य संस्कृति में भगत सिंह की असाधारण प्रमुखता और इतिहासकारों द्वारा उनकी उपेक्षा 20वीं शताब्दी के भारतीय इतिहास की एक पहेली है।[5]

गांधीजी द्वारा भगत सिंह को फाँसी से बचाने के लिए किए गए प्रयासों की गंभीरता पर भी प्रश्न-चिह्न लगते रहे हैं। अदालत द्वारा फाँसी की सजा सुनाई जाने के बाद देश भर की उम्मीद गांधीजी पर टिकी थी क्योंकि उन दिनों गांधीजी और वायसराय लॉर्ड इरविन के मध्य समझौते को लेकर चर्चा हो रही थी। 17 फरवरी से 5 मार्च 1931 तक दोनों की 8 बार भेंट हुई थी परंतु जब समझौता हुआ तो उसमें भगत सिंह और उनके साथियों का कोई जिक्र ही नहीं था। अंततः 23 मार्च 1931 को भगत सिंह, राजगुरु व सुखदेव को लाहौर सेंट्रल जेल में फाँसी दे दी गई। गांधीजी और लॉर्ड इरविन के बीच भगत सिंह को लेकर क्या बात हुई थी? गांधीजी ने भगत सिंह को बचाने का प्रयास किया था तो असफल कैसे हो गए? क्या वे भगत सिंह से ईर्ष्या करते थे? यदि हाँ तो क्यों? प्रश्न अनेक हैं जिनके उत्तर भावुकता में बहकर सोशल मीडिया पर नहीं खोजे जा सकते, इसके लिए आवश्यक है इतिहास के पन्नों पर जमी समय की धूल को हटाकर धुँध ले हो चुके शब्दों को पूरी सतर्कता से पढ़ा जाए। सागर मंथन कर अमृत की खोज की जाए और इस प्रयास में यदि विष भी मिलता है तो उसे भी पूरी ईमानदारी से स्वीकार करने का साहस दिखाया जाए।

भगत सिंह जब 16 साल के हुए तो वर्ष 1923 में देश को आजाद कराने की धुन में घर छोड़ दिया। उनका सार्वजनिक जीवन केवल 7 साल का था जो 23 वर्ष की कम उम्र में ही समाप्त हो गया जबकि गांधीजी का सार्वजनिक जीवन तो शुरू ही 23 वर्ष की आयु में हुआ था जब वर्ष 1893 में वे दक्षिण अफ्रीका गए और रंगभेद के शिकार हुए। गांधीजी ने अहिंसा और सत्याग्रह को अपना हथियार बनाया था। उनके लिए अहिंसा कोई नीति नहीं बल्कि जीवन-शैली (क्रीड) थी जिस पर समझौता नहीं हो सकता था, यहाँ तक कि 4 फरवरी 1922 को हुई चौरीचौरा की हिंसक घटना के बाद गांधीजी ने असहयोग आंदोलन उस समय वापस ले लिया था जब यह अपने चरम पर था।

विडंबना यह है कि वर्ष 1899 में दक्षिण अफ्रीका में शुरू हुए बोअर युद्ध में गांधीजी ने स्वयं मोर्चे पर जाकर घायल अंग्रेज सैनिकों की मदद की थी।[6] वर्ष 1914 में जब प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हुआ तब वे इंग्लैंड में थे। [उन्होंने फिर से अंग्रेज सैनिकों की मदद करने के लिए एम्बुलेंस कोर का गठन किया।[7] अहिंसा के पुजारी के इस निर्णय ने उनके अपने अनुयायियों को भी दुविधा में डाल दिया था[8] और वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि 'युद्ध में घायल सैनिकों की सेवा करने वालों को भी युद्ध के अपराध से मुक्त नहीं किया जा सकता।'[9] लेकिन उन दिनों की अपनी मनःस्थिति के बारे में वे लिखते हैं - "मुझे लगा इंग्लैंड में रहने वाले भारतीयों को युद्ध में अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। अंग्रेज छात्रों ने सेना में सेवा के लिए आवेदन किया है, भारतीयों को भी पीछे नहीं रहना चाहिए।"[10]

वर्ष 1918 में तो उन्होंने गुजरात के गाँव-गाँव में पैदल घूमकर भारतीय युवाओं से सेना में भर्ती होने की अपील की और उन्हें इसके लिए प्रेरित करने की जी-तोड़ कोशिश की। उन्होंने पर्चे छपवाकर बाँटे जिनमें लिखा था - "यदि आप हथियार चलाना सीखना चाहते हैं तो यह स्वर्णिम अवसर है।"[11]

अहिंसा का यह कैसा सिद्धांत था? शत्रु की सहायता के लिए हथियार उठाओ तो न्यायोचित और शत्रु के विरुद्ध उठाओ तो अधर्म! "हिंसा के प्रति उनका (गांधीजी का) रवैया सदैव आकस्मिक व दोहरे मनोभाव वाला रहा है और रहेगा।"[12] वे जानते थे कि ब्रिटेन के सामर्थ्य का मुकाबला शस्त्रविहीन भारत इक्का-दुक्का हिंसक घटनाओं से नहीं कर सकता था। दांडी मार्च शुरू करने से दो दिन पहले 10 मार्च, 1930 को साबरमती आश्रम में इकट्ठा हुए लोगों को संबोधित करते हुए गांधीजी ने कहा था - "मुझे नहीं लगता कि तुममें से कोई एक भी यहाँ आया होता यदि बम और बंदूक की गोलियों से तुम्हारा सामना हुआ होता।"[13] संभवतः इसीलिए वे अंग्रेजों के विरुद्ध अहिंसा को लेकर अडिग थे।

लाला लाजपत राय की मृत्यु का बदला लेने के लिए 17 दिसंबर, 1928 को लाहौर में भगत सिंह व साथियों ने अंग्रेज असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलिस जे. पी. सांडर्स का वध कर दिया था। गांधीजी सहित देश के

लगभग सभी बड़े नेताओं ने इसकी जमकर निंदा की थी। 27 दिसंबर, 1928 को 'यंग इंडिया' में लेख लिखकर गांधीजी ने इस घटना को 'कायरतापूर्ण कृत्य'[14] बताया। इसके बाद 8 अप्रैल, 1929 को भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने पब्लिक सेफ्टी बिल और ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल के विरोध में तथा क्रांति का संदेश देश भर में पहुँचाने के लिए सेंट्रल असेंबली में बम फेंक दिए। सभी बड़े नेताओं ने इस घटना की और भी कठोर शब्दों में निंदा की। चूँकि भगत सिंह का उद्देश्य किसी की जान लेना नहीं था इसलिए बमों में कोई सॉलिड प्रोजेक्टाइल्स नहीं थे जो उन दिनों आम बात थी।[15] असेंबली हॉल से बरामद बमों के अधिकांश टुकड़ों पर कैल्शियम कार्बोनेट मिला था जो बमों की मारक क्षमता को कम करता है।[16] 5 जून, 1929 को दिल्ली के सेशन जज मिडलटन की अदालत में चीफ इंस्पेक्टर ऑफ एक्सप्लोसिव्स डॉ. रॉब्सन से पूछे गए प्रश्नों के उत्तरों से ये बातें साबित हो गई थीं।

6 जून 1929 को दिल्ली सेशन जज की अदालत में भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त का ऐतिहासिक बयान पढ़ा गया जो क्रांति का शंखनाद था। भगत सिंह जानते थे कि पूरे बयान को अदालत की कार्यवाही में शामिल नहीं किया जाएगा, इसलिए इसे पहले ही जेल से बाहर भिजवा दिया था जो देश-विदेश में अनेक अखबारों में पूरा छपा था। जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस बुलेटिन के 1 जुलाई के अंक में उसे छापा। जब गांधीजी ने यह पढ़ा तो उसी दिन उन्होंने जवाहरलाल नेहरू को पत्र लिखकर फटकार लगाई। 15 जून, 1929 से भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने जेलों में राजनीतिक कैदियों की खराब स्थिति के विरोध में ऐतिहासिक भूख हड़ताल शुरू की जिसका देश भर में जबरदस्त असर हुआ था। कल तक क्रांतिकारियों की निंदा का कोई अवसर न चूकने वाले नेताओं और अखबारों की भाषा भी बदल गई थी किंतु गांधीजी अब भी अपनी राय पर अडिग थे।

गांधीजी ने लिखा - "*मैंने कांग्रेस बुलेटिन का ताजा अंक पढ़ा। मुझे लगता है कि एक ऑफिशियल पब्लिकेशन जो केवल कांग्रेस की गतिविधियों को दर्ज करने के लिए बना है उसमें उस बयान का छपना गलत था। यदि मेरिट पर भी बात करें तो मैं समझता हूँ कि वह बयान उनके वकील ने तैयार किया था। यह उनकी अंतरात्मा की आवाज नहीं था जैसा कि तुम और मैं समझते थे।*

और न ही मुझे तुम्हारे द्वारा उनकी भूख हड़ताल की वकालत करना और अनुमोदन करना अच्छा लगा। मेरी राय में उनकी भूख हड़ताल का कोई मतलब नहीं है और यदि हो भी तो यह ऐसा है मानो मक्खी के मारने के लिए कोई भारी हथोड़े [नास्मिथ हैमर] का प्रयोग करे।" [17]

पूरे पत्र में गांधीजी कहीं भी भगत सिंह के नाम का प्रयोग नहीं करते हैं। किसी भी लेखन में जब आप किसी व्यक्ति का जिक्र पहली बार करते हैं तो उसका नाम लेते हैं और बाद में 'वह', 'वे', 'उसका' 'उनका' 'उन्हें' आदि सर्वनामों से उद्धृत करते हैं। वे भगत सिंह द्वारा अदालत में दिए बयान पर भी संदेह करते हैं। भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त के वकील आसफ अली ने स्वयं कहा था कि वह ऐतिहासिक बयान भगत सिंह ने स्वयं तैयार किया था। यहाँ तक कि जवाहरलाल नेहरू ने भी 13 जुलाई 1929 के अपने पत्र में गांधीजी को लिखा, "आपको गलतफहमी हुई है। मेरी जानकारी है कि वह बयान उन्होंने स्वयं लिखा था, उसमें वकील का कोई योगदान नहीं है।"[18]

परंतु गांधी जी का कहना था कि वह बयान भगत सिंह की अंतरात्मा की आवाज नहीं था। गांधीजी भगत सिंह और उनके साथियों की भूख हड़ताल का भी विरोध करते हैं। उन्होंने उनकी भूख हड़ताल को 'बेमतलब' बताया जबकि उन्होंने स्वयं कई बार भूख हड़ताल की जिसे उपवास कहा जाता था। 1 जुलाई, 1929 का वह पत्र संदेह पैदा करता है कि कहीं गांधी जी भगत सिंह से ईर्ष्या तो नहीं करते थे? इसमें कोई संदेह नहीं है कि स्वतंत्रता के आंदोलन को जन-आंदोलन बनाने में गांधीजी का योगदान बहुत बड़ा है। लेकिन इसका यह अर्थ भी नहीं है कि उनमें कोई मानवीय कमजोरी नहीं थी। स्वयं गांधीजी ने कभी ऐसा दावा नहीं किया।

गांधीजी वर्ष 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटते हैं। वर्ष 1920 में असहयोग आंदोलन शुरू करते हैं और 12 साल के भगत सिंह सहित सारा देश उनके साथ खड़ा हो जाता है। वर्ष 1920 में लोकमान्य तिलक और 1925 में देशबंधु चितरंजन दास की मृत्यु हो जाती है जबकि जिन्ना वर्ष 1920 में ही कांग्रेस छोड़ चुके थे। सरदार पटेल, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, राजेंद्र प्रसाद, मौलाना आजाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी आदि सभी बड़े नेता गांधीजी के नेतृत्व को स्वीकार कर लेते हैं। अब गांधीजी कांग्रेस व देश के सर्वोच्च नेता बन चुके हैं

जेल में बंद साथियों के पूछने पर फाँसी से एक दिन पहले भगत सिंह ने लिखा था - "आज मेरी कमजोरियाँ जनता के सामने नहीं हैं। अगर मैं फाँसी से बच गया तो वे जाहिर हो जाएँगी और क्रांति का प्रतीक चिह्न मद्धम पड़ जाएगा या संभवत: मिट ही जाए। लेकिन दिलेराना ढंग से हँसते-हँसते मेरे फाँसी चढ़ने की सूरत में हिंदुस्तानी माताएँ अपने बच्चों के भगत सिंह बनने की आरजू किया करेंगी।"[19] कहने का अर्थ यह है कि कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हो सकता जिसमें कोई कमी न हो। व्यक्तियों के योगदान का मूल्यांकन समग्र रूप से होना चाहिए। गांधीजी की महानता और उनके योगदान का मूल्यांकन भी अंधभक्त होने की बजाय तार्किक दृष्टिकोण व निष्पक्ष भाव से ही करना होगा।

गांधीजी वर्ष 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटते हैं। वर्ष 1920 में असहयोग आंदोलन शुरू करते हैं और 12 साल के भगत सिंह सहित सारा देश उनके साथ खड़ा हो जाता है। वर्ष 1920 में लोकमान्य तिलक और 1925 में देशबंधु चितरंजन दास की मृत्यु हो जाती है जबकि जिन्ना वर्ष 1920 में ही कांग्रेस छोड़ चुके थे। सरदार पटेल, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, राजेंद्र प्रसाद, मौलाना आजाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी आदि सभी बड़े नेता गांधीजी

के नेतृत्व को स्वीकार कर लेते हैं। अब गांधीजी कांग्रेस व देश के सर्वोच्च नेता बन चुके हैं। उन्हें चुनौती देने वाला अब कोई नहीं है। ऐसे में मनुष्य के स्वभाव में हठ और अहंकार का आ जाना स्वाभाविक ही है, किंतु गांधीजी के बारे में ऐसा कहना आपत्तिजनक है। देवतुल्य समझे जाने वाले किसी व्यक्ति की तार्किक आलोचना भी आसानी से स्वीकार नहीं होती। अपने लेख 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' में भगत सिंह लिखते हैं - "जाओ और किसी प्रचलित पंथ का विरोध करो; किसी नायक की, किसी महान व्यक्ति की - जो साधारणतया आलोचना से ऊपर माना जाता है - आलोचना करो, तुम्हारे तर्क की शक्ति हजारों लोगों को तुम पर मिथ्याभिमानी होने का आक्षेप लगाने के लिए विवश कर देगी।"[20]

भगत सिंह हिंसाप्रेमी नहीं थे। वे लिखते हैं - "अहिंसा सभी जन-आंदोलनों का अनिवार्य सिद्धांत होना चाहिए।"[21] 19 अक्तूबर, 1929 को पंजाब छात्र संघ के अधिवेशन के लिए भेजे संदेश में भी भगत सिंह युवाओं से बम और पिस्तौल उठाने की बजाय देश भर के कारखानों में, गंदी बस्तियों और गाँवों की टूटी-फूटी झोंपड़ियों में जाकर क्रांति के प्रचार का आह्वान करते हैं।[22] भगत सिंह के लेखन से स्पष्ट है कि वे हिंसा के समर्थक नहीं थे, लेकिन वे काल्पनिक अहिंसा का विरोध करते हैं। वे कहते हैं - "आक्रमण के लिए किया गया बलप्रयोग हिंसा है और इसे नैतिक दृष्टि से उचित नहीं ठहराया जा सकता लेकिन जब न्यायसंगत उद्देश्य से इसका प्रयोग किया जाता है तो यह नैतिक है। बलप्रयोग का पूर्ण निषेध काल्पनिक है।"[23] भगत सिंह द्वारा जेल में की गई ऐतिहासिक भूख हड़ताल और जिस तरह से उन्होंने उस मुकदमे को लड़ा था उसे देखते हुए वर्जिनिया विश्वविद्यालय में इतिहास की प्रोफेसर नीति नैयर उन्हें 'सत्याग्रही' बताती हैं।

अब देखते हैं उस आरोप को जिसमें कहा जाता है कि गांधीजी ने भगत सिंह को फाँसी से बचाने की कोई कोशिश नहीं की। 18 फरवरी, 1931 को गांधीजी और इरविन की मीटिंग के बारे में इरविन लिखते हैं -

"अंत में, अन्य विषयों से न जोड़ते हुए, उन्होंने (गांधीजी ने) भगत सिंह का जिक्र किया। उन्होंने फाँसी माफ कर देने का आग्रह नहीं किया था, यद्यपि वे, किसी भी प्राणी की जान लेने के विरोधी होने के नाते, स्वयं ऐसा करते। वे यह भी सोचते हैं कि ऐसा करने से शांति प्रभावित होगी। परंतु, वर्तमान परिस्थितियों में उन्होंने केवल फाँसी को टालने के लिए कहा।" [24]

उस दिन के वार्तालाप के बारे में स्वयं गांधीजी कहते हैं, "मैंने भगत सिंह के बारे में बात की। मैंने उन्हें (इरविन को) बताया - इसका हमारे वार्तालाप से कोई संबंध नहीं है और यह शायद उचित भी नहीं है कि मैं इसका जिक्र करूँ। परंतु, यदि आप वर्तमान हालात को और अनुकूल बनाना चाहते हैं तो आपको भगत सिंह की फाँसी को स्थगित कर देना चाहिए।" वे आगे लिखते हैं -

"मैं होता तो उसको रिहा कर देता पर मैं किसी सरकार से इसकी आशा नहीं करता। यदि आप इसका कोई उत्तर नहीं देते हैं तो भी मैं कोई बुरा नहीं मानूँगा।" [25]

स्पष्ट है कि गांधीजी फाँसी रद्द करने की नहीं, बल्कि स्थगित करने की बात कर रहे थे। संभव है, वे सोचते थे कि एक बार फाँसी स्थगित हो जाती है तो बाद में रद्द भी हो सकती है। किंतु, जब वे कहते हैं, "मैं होता तो उसको रिहा कर देता पर मैं किसी सरकार से ऐसी अपेक्षा नहीं रखता" और "यदि आप मेरी बात का कोई भी उत्तर नहीं देते हैं तो भी मुझे बुरा नहीं लगेगा" तो फाँसी को स्थगित करने का दबाव भी कमजोर हो जाता है।

16 मार्च, 1931 को सुभाष चंद्र बोस गांधीजी से मिलते हैं और राजनीतिक बंदियों की रिहाई पर चर्चा करते हैं। गांधीजी कहते हैं कि उन्होंने क्रांतिकारियों की रिहाई को समझौते की शर्त इसलिए नहीं बनाया क्योंकि उन्हें विश्वास नहीं था कि वे पुनः हिंसा में लिप्त नहीं होंगे।[26] इसके बाद, 19 मार्च 1931 को फिर से गांधीजी वायसराय से मिलते हैं और वापस चलते समय इरविन से कहते हैं कि उन्होंने अखबार में पढ़ा है कि भगत सिंह को 24 मार्च को फाँसी दी जाएगी। यह दिन बहुत दुर्भाग्यपूर्ण होगा क्योंकि उसी दिन कांग्रेस अध्यक्ष कराची पहुँचेंगे, तब वहाँ का माहौल बहुत उत्तेजनापूर्ण होगा।[27]

उन्हीं दिनों कराची में कांग्रेस का अधिवेशन शुरू हो रहा था और गांधीजी को चिंता इस बात की थी कि यदि भगत सिंह को फाँसी दी गई तो कराची में उस दिन कांग्रेस अध्यक्ष के लिए माहौल शुभ नहीं रहेगा। 23 मार्च, 1931 को गांधीजी वायसराय को पत्र लिखते हैं। यह पत्र पढ़कर लगता है कि वे भगत सिंह को बचाने के लिए सचमुच गंभीर थे। वे लिखते हैं - "जनभावना, उचित या अनुचित, फाँसी के रद्द किए जाने के पक्ष में है। जब कोई सिद्धांत दाँव पर न लगा हो, तब उसका आदर करना कर्तव्य बन जाता है। इस केस में, यदि माफी दी जाती है तो आंतरिक शांति के बढ़ने की पूरी संभावना है। यदि फाँसी दी गई तो शांति को निःसंदेह खतरा है। क्रांतिकारी दल ने मुझे विश्वास दिलाया है कि यदि इनके जीवन बच जाते हैं तो वे हिंसा का परित्याग कर देंगे। मुझे लगता है कि यह अनुल्लंघनीय कर्तव्य है कि जब तक क्रांतिकारी हत्याएँ समाप्त हों तब तक फाँसी को टाल दिया जाए।" [28]

शायद तब तक बहुत देर हो चुकी थी। उसी दिन तो भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी दी जा रही थी। पट्टाभि सीतारमैया लिखते हैं - "गांधीजी ने ही निश्चित रूप से वायसराय से कहा - अगर इन नौजवानों को फाँसी पर लटकाना ही है, तो कांग्रेस अधिवेशन के बाद ऐसा करने की बजाय उससे पहले ही फाँसी पर लटकाना ठीक होगा। इससे देश को यह साफ पता चल जाएगा कि वस्तुतः उसकी क्या स्थिति है और लोगों के दिलों में झूठी आशाएँ नहीं बंधेंगी।"[29]

गांधीजी ने भगत सिंह की फाँसी को रद्द किए जाने को समझौते की शर्त नहीं बनाया। वे उन लोगों की रिहाई की बात कर रहे थे जो उनके द्वारा चलाए गए सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लेने के कारण गिरफ्तार हुए थे। क्या गांधीजी के लिए यह नैतिकता का प्रश्न था या राजनीतिक दूरदर्शिता या विवशता या कुछ और? कहना मुश्किल है। सत्य यह है कि 23 मार्च, 1931 को शाम 7 बजे लाहौर सेंट्रल जेल में भगत सिंह, राजगुरु व सुखदेव को फाँसी दे दी गई। गांधीजी ने फाँसी रद्द करने को भले ही समझौते की शर्त नहीं बनाया था पर इरविन से आग्रह तो किया ही था और अपनी ओर से तर्क भी दिए थे। प्रश्न है कि उनके तर्क, उनका आग्रह निष्प्रभावी क्यों हुआ? शायद पंजाब प्रांत के अंग्रेज नौकरशाहों का विरोध। ऐसा

कहा जाता है कि उन्होंने सामूहिक त्यागपत्र देने की धमकी भी दी थी पर इसके प्रमाण नहीं हैं, यद्यपि कुछ समकालीन लेखकों ने ऐसे अनुमान अवश्य लगाए हैं।[30]

क्या भगत सिंह चाहते थे कि उनकी फाँसी रद्द हो या टल जाए? चारों ओर से दयायाचना के लिए पड़ रहे भारी दबाव के बाद 20 मार्च 1931 को पंजाब के गवर्नर को लिखे पत्र से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि भारत की स्वतंत्रता के उस महायज्ञ में पूर्णाहुति के लिए वे दृढ़संकल्प थे और कोई दबाव, भय या लालच उन्हें अपने कर्तव्यपथ से विचलित नहीं कर सकता था। उन्होंने लिखा था - "आपकी अदालत में हमारे ऊपर सम्राट के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का आरोप सिद्ध किया गया है। इसलिए हमारे साथ युद्धबंदी जैसा ही व्यवहार किया जाए यानी फाँसी की जगह हमें गोली से उड़ा दिया जाए।"[31]

लाहौर षड्यंत्र केस में फैसला आने से कुछ दिन पहले उन्होंने सुखदेव को लिखा था - "मेरी अभिलाषा यह है कि जब यह आंदोलन अपने चरम पर हो तब हमें फाँसी दे दी जाए। यदि कोई सम्मानपूर्ण और उचित समझौता होना कभी संभव हो जाए, तो हमारे जैसे व्यक्तियों का मामला उसके मार्ग में रुकावट या कठिनाई उत्पन्न करने का कारण न बने। जब देश के भाग्य का निर्णय हो रहा हो तो व्यक्तियों के भाग्य को पूर्णतया भुला देना चाहिए।"[32]

भगत सिंह का यह कथन अत्यंत महत्वपूर्ण है। एक बात तो यह कि वे चाहते थे कि उनकी चिता की लपटों से देश के कोने-कोने में क्रांति की मशाल रोशन हो। दूसरी यह कि उन्हें इस बात का पूर्वाभास था कि आने वाले महीनों में अंग्रेजों से समझौते को लेकर बातचीत होगी और उस समय उनकी फाँसी का मामला भी उठाया जाएगा। इसलिए उन्होंने पहले ही गांधीजी और कांग्रेस नेतृत्व के कंधों से यह भार उतार दिया था। साथियों के नाम 22 मार्च, 1931 को अपने अंतिम पत्र में भगत सिंह ने लिखा था - "दिलेराना ढंग से हँसते-हँसते मेरे फाँसी चढ़ने की सूरत में हिंदुस्तानी माताएँ अपने बच्चों के भगत सिंह बनने की आरजू किया करेंगी।"[33]

भगत सिंह हँसते-हँसते और 'इंकलाब-जिंदाबाद' के सिंहनाद के साथ फाँसी चढ़े थे। जब गांधीजी कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने कराची पहुँचे तो उन्हें युवाओं के भारी विरोध का सामना करना पड़ा। उन्हें काले झंडे दिखाए गए और काले कपड़े के फूलों की माला भेंट की गई। गांधीजी ने सम्मानपूर्वक वे फूल स्वीकार किए और वहाँ खड़े युवाओं को संबोधित किया। भगत सिंह के बचपन के मित्र जयदेव गुप्ता जो स्वयं कराची कांग्रेस में उपस्थित थे, वे बताते हैं - "वहाँ दो धड़े थे, एक गांधीजी के पक्ष में और दूसरा विरोध में। लेकिन महात्मा गांधी ऐसे वक्ता थे जिन्होंने अपने तर्कों, मधुर वाणी और शांत स्वभाव से सबको संतुष्ट कर कर दिया था।"[34]

गांधीजी ने भगत सिंह की फाँसी को रद्द किए जाने को समझौते की शर्त नहीं बनाया। वे उन लोगों की रिहाई की बात कर रहे थे जो उनके द्वारा चलाए गए सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लेने के कारण गिरफ्तार हुए थे। क्या गांधीजी के लिए यह नैतिकता का प्रश्न था या राजनीतिक दूरदर्शिता या विवशता या कुछ और? कहना मुश्किल है। सत्य यह है कि 23 मार्च, 1931 को शाम 7 बजे लाहौर सेंट्रल जेल में भगत सिंह, राजगुरु व सुखदेव को फाँसी दे दी गई

कराची कांग्रेस में भगत सिंह और उनके साथी शहीदों के सम्मान में एक प्रस्ताव पास किया गया जिसमें लिखा था - "हर प्रकार की राजनीतिक हिंसा से स्वयं को अलग रखते हुए और उसका विरोध करते हुए, कांग्रेस स्वर्गीय भगत सिंह और उनके साथियों श्री सुखदेव और श्री राजगुरु की वीरता और बलिदान की प्रशंसा करती है और शोक-संतप्त परिवारों के साथ संवेदना व्यक्त करती है।"[35]

यह प्रस्ताव गांधीजी ने तैयार किया था और बड़ी संख्या में लोग इससे नाराज थे क्योंकि इसमें भगत सिंह के बलिदान की प्रशंसा के साथ ही उनके कृत्य की निंदा की गई थी। इस पर वहाँ खूब हंगामा हुआ था। माहौल को शांत करने के लिए "उत्तम ढ़ंग से मंच-प्रबंधन करते हुए, भगत सिंह के पिता सरदार किशन सिंह को मंच पर लाया गया और कांग्रेस नेताओं के समर्थन में बुलवाया गया। पार्टी की रणनीति कमाल की थी।"[36] सरदार किशन सिंह ने आधे घंटे से अधिक भाषण दिया। भगत सिंह के जीवन से जुड़े किस्से सुनाए। जिनको सुनकर श्रोता भाव-विभोर हो गए। तालियों की गड़गड़ाहट हो रही थी और भगत सिंह जिंदाबाद के गगनचुंबी नारे लगने लगे। ऐसे माहौल में सरदार किशन सिंह ने युवाओं से संयम और होश की अपील की।[37] सरदार किशन सिंह ने जनसमूह से अपने जनरल (गांधी) और अन्य कांग्रेस नेताओं का साथ देने की अपील की ताकि देश को आजाद कराया जा सके।[38]

भारत की जनता को क्रांतिकारियों के साथ जुड़ने से रोकने में गांधीजी की भूमिका की सराहना करते हुए आगे चलकर ब्रिटेन की शिक्षा मंत्री बनी एलन विल्किंसन ने गांधीजी को "भारत में अंग्रेजों का सर्वश्रेष्ठ पुलिस मैन" बताया था।[39] 8 मई, 1931 को पत्रकार डार्सी लिंडसे को लिखे पत्र में गांधीजी लिखते हैं - "भगत सिंह के बारे में जो जो जानकारी मैंने प्राप्त की है उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि वह बेदाग चरित्र और अत्यंत साहसी व्यक्ति था।" इन शब्दों में गांधीजी भगत सिंह की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। परंतु इसके आगे वे लिखते हैं - "कुछ युवाओं पर उसका बड़ा प्रभाव था।" भगत सिंह का प्रभाव कुछ युवाओं पर नहीं बल्कि अधिकतर युवाओं के हृदय में भगत सिंह का चित्र अंकित था।

एक और महत्वपूर्ण घटना घटी 28 अप्रैल, 1931 को जब लाहौर में पंजाब के प्रमुख नेताओं की एक बैठक हुई जिसमें भगत सिंह व अन्य शहीदों की स्मृति में एक स्मारक बनाने का निर्णय हुआ। आनंद किशोर मेहता को 'आल इंडिया मार्टियर्स मेमोरियल कमेटी' का जनरल सेक्रेटरी चुना गया। आनंद किशोर मेहता ने देश के प्रमुख नेताओं को पत्र लिखकर इस काम के लिए सहयोग माँगा। अंग्रेज बेचैन थे कि शहीद स्मारक

बनने से कैसे रोका जाए। तभी गांधीजी का एक पत्र उनके हाथ लगा जिसे पाकर अंग्रेजों ने राहत की साँस ली। 20 जून, 1931 को लिखे इस पत्र में गांधीजी ने शहीद स्मारक के लिए कोई भी सहयोग करने से साफ इंकार कर दिया था।[40] इससे पहले 31 मई, 1931 को भी गांधीजी ने इसी विषय में एक पत्र लिखकर आनंद किशोर मेहता को वह कमेटी भंग करने की सलाह दी थी।

गांधीजी ने भगत सिंह को फाँसी से बचाने की भरपूर कोशिश की थी किंतु वे इसे समझौते की शर्त नहीं बना सके क्योंकि वे क्रांतिकारी बंदियों के साथ खड़े नहीं होना चाहते थे और जब वायसराय को इसका अहसास हुआ तो इसने उनके निर्णय में बड़ा फर्क डाला था।[41] गांधीजी अपने सिद्धांत पर अडिग थे तो भगत सिंह अपने आदर्श को समर्पित। दोनों ही भारत के महान पुत्र थे और सदियों तक आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित करते रहेंगे। यह बहस भी निरंतर चलती रहेगी कि गांधीजी ने भगत सिंह को फाँसी से बचाने की कोशिश की या नहीं। सत्य जो भी हो भगत सिंह आज भी युवाओं के सबसे बड़े आइकन हैं क्योंकि वे आदर्श नायक के अवतार और प्रतिभाशाली विचारक थे, आधुनिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते थे, पक्के राष्ट्रवादी और बेदाग चरित्र के धनी और शोषणमुक्त समाज व राष्ट्र के सृजन के लिए प्रतिबद्ध थे।

प्रदीप देसवाल पेशे से इंजीनियर हैं और दिल्ली के द्वारका उपनगर में स्थित प्रतिष्ठित नेताजी सुभाष प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय में कार्यपालक अभियंता के पद पर तैनात हैं। वे भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास, विशेष रूप से क्रांतिकारी आंदोलन, में गहन रुचि रखते हैं। 'राष्ट्र वंदना' के नाम से यूट्यूब चौनल भी चलाते हैं जहाँ भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध कराते हैं। भगत सिंह सहित अनेक क्रांतिकारियों पर सैकड़ों वीडियो बनाए हैं। वर्तमान में नेताजी सुभाष की गौरव गाथा पर वीडियो शृंखला चल रही है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रवादी कविताएँ लिखते हैं जिन्हें मंचों पर भी खूब सराहा जाता है।

संदर्भ

1. पट्टाभि सीतारमैया कृत कांग्रेस का इतिहास, खंड 1, पेज 420
2. महात्मा गांधी की आत्मकथा: द स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, पृ. 176
3. नेताजी सुभाष चंद्र बोस, द इंडियन स्ट्रगल, पृ. 227
4. क्रिस्टोफर पिनी, फोटोज ऑफ गॉड्स, पृ. 117
5. वही, पृ. 126
6. महात्मा गांधी की आत्मकथा: द स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, भाग-3, अध्याय 10: द बोर वॉर, पृ. 243-244
7. वही, भाग 4, अध्याय 38: माई पार्ट इन द वॉर, पृ. 392-393
8. वही, अध्याय 39: स्पिरिचुअल डिलेमा, पृ. 395
9. वही, अध्याय 39: स्पिरिचुअल डिलेमा, पृ. 396
10. वही, भाग 4, अध्याय 38: माई पार्ट इन द वॉर, पृ. 392
11. वही, भाग 5, अध्याय 27: रिक्रूटिंग कैंपेन, पृ. 494
12. कामा मैक्लियन, अ रिवोल्यूशनरी हिस्ट्री ऑफ इंटरवॉर इंडिया, पृ. 4
13. http://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-48.pdf; पृ. 395
14. http://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-43.pdf; पृ. 446
15. अभिलेख पटल; असेंबली बम केस नं. 9 ऑफ 1929। क्राउन बनाम भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त खंड II पृ. 96
16. अभिलेख पटल; असेंबली बम केस नं. 9 ऑफ 1929। क्राउन बनाम भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त खंड II पृ. 89 और 97
17. http://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-46.pdf; पृ. 233
18. https://nehruselectedworks.com/pdfviewer.php?style=UI_Zine_Material.xml&subfolder=&doc=January_1929-March_1931-Series1-Vol4.pdf|13|542#page=192; पृ. 157
19. जगमोहन सिंह व चमन लाल संपादित 'भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज', पृ. 299
20. जगमोहन सिंह व चमन लाल संपादित 'भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज', मैं नास्तिक क्यों हूँ, पृष्ठ 369
21. वही, पृ. 366
22. जगमोहन सिंह व चमन लाल संपादित 'भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज', पृ. 325
23. वही, बम कांड पर सैशन कोर्ट में बयान, पृ. 258
24. होम डिपार्टमेंट, पोलिटिकल ब्रांच, फाइल संख्या 5-45/1931 KW2)
25. gandhiashramsevagram.org – कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, खंड 51, पृ. 155
26. द हिंदू, दिनांक 17 मार्च 1931
27. http://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-51.pdf; पृ. 272
28. http://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-51.pdf;पृ. 290
29. पट्टाभि सीतारमैया कृत 'कांग्रेस का इतिहास', खंड 1, पृ. 408
30. रॉबर्ट बर्नेज, नेकेड फकीर, पृ. 222 एवं अभ्युदय, दिनांक 25 मार्च, 1931
31. जगमोहन सिंह व चमन लाल संपादित भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज, पृ. 341
32. वही, पृ. 323
33. वही, पृ. 300
34. एमएमएमएल, ओएचटी, जयदेव गुप्त
35. पट्टाभि सीतारमैया कृत कांग्रेस का इतिहास, खंड 1, पृ. 421
36. नेताजी सुभाष चंद्र बोस, द इंडियन स्ट्रगल, पृ. 227
37. कामा मैक्लियन, अ रिवोल्यूशनरी हिस्ट्री ऑफ इंटरवॉर इंडिया, पृ. 165
38. कुलदीप नैयर कृत शहीद भगत सिंह क्रांति में एक प्रयोग, पृ. 120
39. नेताजी सुभाष चंद्र बोस, द इंडियन स्ट्रगल, पृ. 219
40. नेशनल आर्काइव्ज - होम/पोलिटिकल/फाइल नं. 4/12-1931
41. नेताजी सुभाष चंद्र बोस, द इंडियन स्ट्रगल, पृ. 226

23 दिसंबर 1929 को हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के क्रांतिकारियों ने वायसराय इरविन की रेलगाड़ी को बम से उड़ाने की कोशिश की। हालाँकि इस घटना में इरविन बच गए। महात्मा गांधी ने इस पर यंग इंडिया में एक लेख लिखा 'बम की उपासना' (2 जनवरी 1930)। इसके जबाब में क्रांतिकारियों की ओर से 'बम का दर्शन' नामक लेख आया। इसके लेखक भगवती चरण वोहरा और यशपाल थे। कहा जाता है कि प्रकाशन से पहले भगत सिंह ने इस लेख को जेल में देखा था और उसकी सराहना की थी

बम की उपासना

भारत के राजनीतिक विचार रखने वाले तबके के वातावरण में हम लोगों के चारों ओर इतनी ज्यादा हिंसा व्याप्त है कि कभी इधर तो कभी उधर बमों के फेंके जाने से किसी को कोई परेशानी महसूस नहीं होती; और शायद ऐसी किसी घटना के हो जाने पर कुछ लोगों के दिलों में खुशी तक होती है। यदि मैं यह न जानता होता कि यह हिंसा किसी हिलाए गए तरल पदार्थ में ऊपर के तल पर उठकर आया हुआ भाग ही है तो शायद मैं निकट भविष्य में अहिंसा से स्वतंत्रता दिला सकने में सफल होने के बारे में निराश हो जाता। हिंसा या अहिंसा का सिद्धांत मानने वाले हम सब लोग ही स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील हैं। खुशकिस्मती से पिछले लगभग 12 महीनों में भारत के अपने दौरे के अनुभवों के आधार पर मुझे ऐसा कुछ विश्वास हो गया है कि देश की विशाल जनता जो इस तथ्य से वाकिफ है कि हमें स्वतंत्रता प्राप्त करनी ही है, हिंसा की भावनाएँ अछूती हैं। इसलिए वाइसराय की रेलगाड़ी के नीचे हुए बम विस्फोटों की तरह होने वाले इक्के-दुक्के हिंसापूर्ण विस्फोटों के बावजूद मैं यह मानता हूँ कि हमारे राजनीतिक संघर्ष में अहिंसा की जड़ें जम गई हैं। राजनीतिक संघर्ष में अहिंसा की प्रभावशीलता में मेरे बढ़ते हुए विश्वास और जनता के इस पर चल सकने की संभावना के कारण ही, मैं उन लोगों को जो अभी हिंसा के विचारों से इतने ओतप्रोत नहीं हुए हैं कि उन पर तर्कों का कोई असर ही न हो, अपनी बात समझाना चाहता हूँ। तो फिर हम एक क्षण यह सोचें कि यदि वाइसराय गंभीर रूप से घायल हो जाते या मारे जाते तो क्या होता। तब यह तो निश्चित ही है कि पिछले महीने की 23 तारीख को कोई सभा नहीं हो पाती और इसलिए यह निश्चित न हो पाता कि कांग्रेस को क्या तरीका अपनाना है। कम से कम कहा जाए तो भी यह एक अवांछनीय परिणाम तो होता ही। हम लोगों के सौभाग्य से वाइसराय और उनके दल में कोई जख्मी नहीं हुआ और उन्होंने बड़े सहज भाव से दिन भर का अपना कार्यक्रम इस तरह निभाया, मानो कुछ हुआ ही न हो। मैं जानता हूँ कि जिन लोगों को कांग्रेस का भी कोई खयाल नहीं है, जो उससे कुछ आशा नहीं रखते और जिन्हें सिर्फ हिंसा के साधन का ही भरोसा है, उन पर इस परिकल्पी तर्क का कुछ असर नहीं पड़ेगा। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि अन्य लोग इस दलील के सार को समझ सकेंगे और मैंने जिस परिस्थिति की कल्पना कर के बात सामने रखी है उससे जो महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं उन्हें एक साथ मिलाकर देख सकते हैं।

फिर, इस देश में अभी तक राजनीतिक हिंसा से जो कुछ हाथ लगा है, उसे लीजिए। जब-जब हिंसा हुई है, हर बार हमें गहरा नुकसान पहुँचा है; अर्थात् सैनिक खर्च बढ़ा है। अगर कोई इसके उत्तर में मार्ले-मिंटो सुधार, मांटेग्यू सुधार जैसी चीजों की ओर इशारा करे तो मैं उन्हें मानने को तैयार हूँ। लेकिन अब दिनों-दिन राजनीतिज्ञों में यह बात महसूस करने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है कि जबर्दस्त आर्थिक बोझ के बदले हमें खिलौनों-जैसे ये सुधार दिए गए हैं। नगण्य रियायतें तो दी गई हैं, कुछ और भारतीयों को सरकारी नौकरियाँ मिल गई हैं, किंतु उस जनता का बोझ, जिसके नाम पर और जिसके लिए हम स्वतंत्रता चाहते हैं, और भी बढ़ गया है और

बदले में उसे कुछ भी नहीं मिला है। यदि हम इतना ही समझ लें कि सिर्फ विदेशियों को डराकर ही हमें स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होगी, बल्कि खुद भय त्याग कर और ग्रामीणों को अपना भय त्यागना सिखला कर हम सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त करेंगे, तो यह बात तुरंत हमारी समझ में आ जाएगी कि हिंसा आत्मघातक है। फिर आप इसकी खुद हम लोगों पर होने वाली प्रतिक्रिया की बात सोचिए। विदेशी शासकों को मारने के बाद अपने ऐसे देशवासियों को मारना एक स्वाभाविक कदम ही होगा, जिन्हें हम देश की प्रगति में बाधा डालने वाला मानेंगे। अन्य देशों में हिंसात्मक कार्यवाहियों का चाहे जो भी परिणाम हुआ हो और अहिंसा के दर्शन का हवाला दिए बिना भी यह समझने में कुछ बहुत वौद्धिक प्रयत्न की जरूरत नहीं है कि यदि हम प्रगति में बाधा डालने वाले उन अनेक दोषों से समाज को मुक्त कराने के लिए हिंसा का सहारा लेते हैं तो हम केवल अपनी कठिनाइयाँ ही बढ़ाएंगे और इससे स्वतंत्रता का दिन और भी दूर हटेगा। जो लोग सुधारों की आवश्यकता नहीं समझते क्योंकि वे उनके लिए तैयार नहीं है, सुधारों के जबर्दस्तीत लाए जाने पर वे क्रोध से पागल हो उठेंगे और बदला लेने के लिए विदेशों की मदद माँगेंगे। क्या पिछले कई वर्षों में हमारी आँखों के सामने यही नहीं होता रहा है; अब भी इसकी दु:खद याद हमारे सामने स्पष्ट है। अब तर्क का भावात्मक पहलू ले लीजिए। जब 1920 में अहिंसा कांग्रेस के सिद्धांत का अंग बन गईश और कांग्रेस मानो जादू से एक सर्वथा परिवर्तित संस्था बन गई। कोई नहीं जानता कि जनता में जागृति कैसे आ गई। यहाँ तक कि दूरस्थ गाँवों में भी हलचल मच गई। ऐसा लगता था कि बहुतेरी बुराइयाँ बिलकुल निकल गई हैं। और लोग अपनी शक्ति पहचानने लगे हैं। उन्होंने सत्ताधारियों को मदद देना बंद कर दिया। अलमोड़ा में तथा भारत के अन्य कई भागों में जहाँ कहीं जनता को अपने भीतर निहित शक्ति का भान हुआ, बेगार की प्रथा कुहरे की तरह छट गई। यह स्वयं अपनी शक्ति स्वतंत्रता प्राप्त करना था। यह आम जनता द्वारा आम जनता के लिए प्राप्त सच्चा स्वराज्य था। यदि चौरीचौरा कांड में परिणत होने वाली घटनाओं से अहिंसा की प्रगति में बाधा न पड़ी होती, तो में बिना संकोच के यह कह सकता हूँ कि हम लोग अब तक पूर्ण स्वराज्य पा चुके होते। इस बात पर किसी ने मतभेद प्रकट नहीं किया है। लेकिन कई लोगों ने मतभेद प्रकट करते हुए यह तो अवश्य कहा है, "लेकिन आप आम जनता को अहिंसा नहीं सिखला सकते"। यह तो व्यक्तियों को ही सिखलाई जा सकती है और ऐसे व्यक्ति भी बिरले ही होंगे। मेरी समझ में ऐसा सोचना अपने आपको जबर्दस्त धोखा देना है। यदि मानव स्वभाव से अहिंसक न होता तो वह अपने आपको युगों पूर्व नष्ट कर चुका होता। लेकिन हिंसा और अहिंसा की शक्तियों में होने वाले द्वंद्व के अंत में अहिंसा सदैव विजयी रही है। सच तो यह है कि हम में प्रतीक्षा करने और लोगों में यह प्रचार करने के लिए अपने आपको पूरे मन से लगा देने का धैर्य नहीं है कि वे राजनीतिक उद्देश्यों के लिए अहिंसा को साधन रूप में अपनाएँ।

अब हम लोग एक नए युग में प्रवेश कर रहे हैं। पूर्ण स्वराज्य - हमारा गंतव्य दूरस्थ नहीं वरन तात्कालिक उद्देश्य है। क्या यह स्पष्ट नहीं है कि यदि हमें करोड़ों लोगों में स्वराज्य की सच्ची भावना उपजानी है तो वैसा हम सिर्फ अहिंसा द्वारा और उसके अंतर्गत आने वाली सभी चीजों द्वारा ही कर सकेंगे। इतना ही काफी नहीं है कि हम गुप्त हिंसा द्वारा अंग्रेजों का जीवन खतरे में डालकर उन्हें बाहर भगा दें। इससे स्वराज्य नहीं मिलेगा; एकदम अराजकता फैल जाएगी। हम अपनी बात लोगों के दिल और दिमाग को जँचाकर, अपने बीच परस्पर एकता पैदा करके और अपने मतभेद समाप्त करके स्वराज्य स्थापित कर सकते हैं; और जिन्हें हम अपनी प्रगति में बाधा डालने वाला मानते हैं उन लोगों को डराकर या मारकर नहीं बल्कि उनसे धैर्य और नरमी से व्यवहार करके, विरोधी का हृदय परिवर्तन करके हम सामूहिक सविनय अवज्ञा करना चाहते हैं। यह बात तो सभी स्वीकार करते हैं कि यह उपाय एक निश्चित उपाय है। सभी समझते हैं कि सविनय का अर्थ यहाँ पूर्ण अहिंसा है; और क्या यह कई बार स्पष्ट नहीं हो चुका है कि सामूहिक अहिंसा और सामूहिक अनुशासन के बिना सविनय अवज्ञा असंभव है? और कुछ नहीं तो जिसकी ओर मैंने संकेत किया है ऐसी सीमित ढंग की अहिंसा हमारी स्थिति की माँग है; इस बात का विश्वास दिलाने के लिए हमारी धार्मिक भावना को उभारने की निश्चय ही आवश्यकता नहीं है। इसलिए जो लोग विवेकशील हैं उन्हें इस हाल के बम विस्फोट जैसे कार्यों का छुपे या खुले ढंग मे अनुमोदन करना बंद कर देना चाहिए। बल्कि उन्हें खुले आम और पूरे हृदय से इन विस्फोटों की निंदा करनी चाहिए, ताकि हमारे बहके हुए देशभक्त अपनी हिंसात्मक भावनाओं को मिलने वाले प्रोत्साहन के अभाव में हिंसा की व्यीर्थता और हिंसात्मोक कार्यवाहियों ने हर बार जो बड़ा भारी नुकसान किया है, उसे समझ जाएँ।

अंग्रेजी से, यंग इंडिया, 2-1-1930 (संपूर्ण गांधी वाङ्मय, 372, अध्याय 351)

बम का दर्शन

हाल ही की घटनाएँ। विशेष रूप से 23 दिसंबर, 1929 को वाइसराय की स्पेशल ट्रेन उड़ाने का जो प्रयत्न किया गया था, उसकी निंदा करते हुए कांग्रेस द्वारा पारित किया गया प्रस्ताव तथा यंग इंडिया में गांधी जी द्वारा लिखे गए लेखों से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय कांग्रेस ने गांधी जी से साँठ-गाँठ कर भारतीय क्रांतिकारियों के विरुद्ध घोर आंदोलन प्रारंभ कर दिया है। जनता के बीच भाषणों तथा पत्रों के माध्यम से क्रांतिकारियों के विरुद्ध बराबर प्रचार किया जाता रहा है। या तो यह जानबूझकर किया गया या फिर केवल अज्ञान के कारण उनके विषय में गलत प्रचार होता रहा है और उन्हें गलत समझा जाता रहा। परंतु क्रांतिकारी अपने सिद्धांतों तथा कार्यों की ऐसी आलोचना से नहीं घबराते हैं। बल्कि वे ऐसी आलोचना का स्वागत करते हैं, क्योंकि वे इसे इस बात का स्वर्णावसर मानते हैं कि ऐसा करने से उन्हें उन लोगों को क्रातिकारियों के मूलभूत सिद्धांतों तथा उच्च आदर्शों को, जो उनकी प्रेरणा तथा शक्ति के अनवरत स्रोत हैं, समझाने का अवसर मिलता है। आशा की जाती है कि इस लेख द्वारा आम जनता को यह जानने का अवसर मिलेगा कि क्रांतिकारी क्या हैं, उनके विरुद्ध किए गए भ्रमात्मक प्रचार से उत्पन्न होने वाली गलतफहमियों से उन्हें बचाया जा सकेगा।

पहले हम हिंसा और अहिंसा के प्रश्न पर ही विचार करें। हमारे विचार से इन शब्दों का प्रयोग ही गलत किया गया है, और ऐसा करना ही दोनों दलों के साथ अन्याय करना है, क्योंकि इन शब्दों से दोनों ही दलों के सिद्धांतों का स्पष्ट बोध नहीं हो पाता। हिंसा का अर्थ है अन्याय के लिए किया गया बल प्रयोग, परंतु क्रांतिकारियों का तो यह उद्देश्य नहीं है, दूसरी ओर अहिंसा का जो आम अर्थ समझा जाता है, वह है आत्मिक शक्ति का सिद्धांत। उसका उपयोग व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय अधिकारों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। अपने आपको कष्ट देकर आशा की जाती है कि इस प्रकार अंत में अपने विरोधी का हृदय परिवर्तन संभव हो सकेगा।

एक क्रांतिकारी जब कुछ बातों को अपना अधिकार मान लेता है तो यह उनकी माँग करता है, अपनी उस माँग के पक्ष में दलीलें देता है, समस्त आत्मिक शक्ति के द्वारा उन्हें प्राप्त करने की इच्छा करता है, उसकी प्राप्ति के लिए अत्यधिक कष्ट सहन करता है, इसके लिए यह बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए प्रस्तुत रहता है और उसके समर्थन में यह अपना समस्त शारीरिक बल प्रयोग भी करता है। इसके इन प्रयत्नों को आप चाहे जिस नाम से पुकारें, परंतु आप इन्हें हिंसा के नाम से संबोधित नहीं कर सकते, क्योंकि ऐसा करना कोश में दिए इस शब्द के अर्थ के साथ अन्याय होगा। सत्याग्रह का अर्थ है सत्य के लिए आग्रह उसकी स्वीकृति के लिए केवल आत्मिक शक्ति के प्रयोग का ही आग्रह क्यों? इसके साथ-साथ शारीरिक बल प्रयोग भी (क्यों) न किया जाए? क्रांतिकारी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अपनी शारीरिक एवं नैतिक शक्ति दोनों के प्रयोग में विश्वास करता है, परंतु नैतिक शक्ति का प्रयोग करने वाले शारीरिक बल प्रयोग को निषिद्ध मानते हैं। इसलिए अब सवाल यह नहीं है कि आप हिंसा चाहते हैं या अहिंसा, बल्कि प्रश्न तो यह है कि आप अपने उद्देश्यं की प्राप्ति के लिए शारीरिक बल सहित नैतिक बल का प्रयोग करना चाहते हैं, या केवल आत्मिक शक्ति का? क्रांतिकारियों का विश्वास है कि देश को क्रांति से ही स्वतंत्रता मिलेगी। वे जिस क्रांति के लिए प्रयत्नशील हैं और जिस क्रांति का रूप उनके सामने स्पष्ट है, उसका अर्थ केवल यह नहीं है कि विदेशी शासकों तथा उनके पिट्ठुओं से क्रातिकारियों का केवल सशस्त्र संघर्ष हो, बल्कि इस सशस्त्र संघर्ष के साथ-साथ नवीन सामाजिक व्यवस्था के द्वार देश के लिए मुक्त हो जाएँ। क्रांति पूँजीवाद, वर्गवाद तथा कुछ लोगों को ही विशेषाधिकार दिलाने वाली प्रणाली का अंत कर देगी। यह राष्ट्र को अपने पैरों पर खड़ा करेगी, उससे नवीन राष्ट्र और नए समाज का जन्म होगा। क्रांति से सबसे बड़ी बात तो यह होगी कि वह मजदूर तथा किसानों का राज्य कायम कर उन सब सामाजिक अवांछित तत्वों को समाप्त कर देगी जो देश की राजनीतिक शक्ति को हथियाए बैठे हैं।

आज की तरुण पीढ़ी को जो मानसिक गुलामी तथा धार्मिक रूढ़िवादी बंधन जकड़े हैं और उससे छुटकारा पाने के लिए तरुण समाज की जो बेचैनी है, क्रांतिकारी उसी में प्रगतिशीलता के अंकुर देख रहा है। नवयुवक जैसे-जैसे मनोविज्ञान आत्मसात् करता जाएगा, वैसे-वैसे राष्ट्र की गुलामी का चित्र उसके सामने स्पष्ट होता जाएगा तथा उसकी देश को स्वतंत्र करने की इच्छा प्रबल होती जाएगी। और उसका यह क्रम तब तक चलता रहेगा जब तक की युवक न्याय, क्रोध और क्षोभ से ओतप्रोत हो अन्याय करने वालों की हत्या न प्रारंभ कर देगा। इस प्रकार देश में आतंकवाद का जन्म होता है। आतंकवाद संपूर्ण क्रांति नहीं और क्रांति भी आतंकवाद के बिना पूर्ण नहीं। यह तो क्रांति का एक आवश्यक अंग है। इस सिद्धांत का समर्थन इतिहास की किसी भी क्रांति का विश्लेषण कर जाना जा सकता है। आतंकवाद आततायी के मन में भय पैदा कर पीड़ित जनता में प्रतिशोध की भावना जाग्रत कर उसे शक्ति प्रदान करता है। अस्थिर

भावना वाले लोगों को इससे हिम्मत बँधती है तथा उनमें आत्मविश्वास पैदा होता है। इससे दुनिया के सामने क्रांति के उद्देश्य का वास्तविक रूप प्रकट हो जाता है क्योंकि ये किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता की उत्कट महत्वाकांक्षा का विश्वास दिलाने वाले प्रमाण हैं, जैसे दूसरे देशों में होता आया है, वैसे ही भारत में भी आतंकवाद क्रांति का रूप धारण कर लेगा और अंत में क्रांति से ही देश को सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता मिलेगी।

तो यह हैं क्रांतिकारी के सिद्धांत। जिनमें वह विश्वाास करता है और जिन्हैं देश के लिए प्राप्त करना चाहता है। इस तथ्य की प्राप्ति के लिए यह गुप्त तथा खुलेआम दोनों ही तरीकों से प्रयत्न कर रहा है। इस प्रकार एक शताब्दी से संसार में जनता तथा शासक वर्ग में जो संघर्ष चला आ रहा है, यही अनुभव उसके पहुँचने का मार्गदर्शक है। क्रांतिकारी जिन तरीकों में विश्वास करता है, वे कभी असफल नहीं हुए।

इस बीच कांग्रेस क्यान कर रही थी? उसने अपना ध्योय स्वराज्य से बदलकर पूर्ण स्वतंत्रता घोषित किया। इस घोषणा से कोई भी व्यक्ति यही निष्कर्ष निकालेगा कि कांग्रेस ने ब्रिटिश शासन के विरूद्ध युद्ध की घोषणा न कर क्रांतिकारियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी है। इस संबंध में कांग्रेस का पहला वार था उसका यह प्रस्ताव जिसमें 21 दिसंबर, 1920 को वाइसराय की स्पेथशल ट्रेन उड़ाने के प्रयत्न की निंदा की गई। और प्रस्ताव का मसौदा गांधी जी ने स्वयं तैयार किया था और उसे पारित कराने के लिए गांधी जी ने अपनी सारी शक्ति लगा दी। परिणाम यह हुआ कि 1918 की सदस्य संख्या में यह केवल 31 अधिक मतों से पारित हो सका। क्या इस अत्यल्प बहुमत में भी राजनीतिक ईमानदारी थी? इस संबंध में हम सरलादेवी चौधरानी का मत ही यहाँ उद्धृत करें। ये तो जीवन-भर कांग्रेस की भक्त रही हैं। इस संबंध में प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा है - मैंने महात्मा गांधी के अनुयायियों के साथ इस विषय में जो बातचीत की, उससे मुझे मालूम हुआ कि वे इस संबंध में अपने स्वतंत्र विचार महात्मा गांधी के प्रति व्यक्तिगत निष्ठा के कारण प्रकट न कर सके, तथा इस प्रस्ताव के विरुद्ध मत देने में असमर्थ रहे, जिसके प्रणेता महात्मा जी थे। जहाँ तक गांधी जी की दलील का प्रश्न है, उस पर हम बाद में विचार करेंगे। उन्होंने जो दलीलें दी हैं वे कुछ कम या अधिक इस संबंध में कांग्रेस में दिए गए भाषण का ही विस्तृत रूप हैं।

इस दुखद प्रस्ताव के विषय में एक बात मार्के की है जिसे हम अनदेखा नहीं कर सकते, वह यह कि यह सर्वविदित है कि कांग्रेस अहिंसा का सिद्धांत मानती है और पिछले दस वर्षों से वह इसके समर्थन में प्रचार करती रही है। यह सब होने पर भी प्रस्ताव के समर्थन में भाषणों में गाली-गलौच की गई। उन्होंने क्रांतिकारियों को बुजदिल कहा और उनके कार्यों को घृणित। उनमें से एक वक्ता ने धमकी देते हुए यहाँ तक कह डाला कि यदि वे (सदस्य) गांधी जी का नेतृत्व चाहते हैं तो उन्हें इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से पारित करना चाहिए। इतना सब कुछ किए जाने पर भी यह प्रस्ताव बहुत थोड़े मतों से ही पारित हो सका। इससे यह बात निशंक प्रमाणित हो जाती है कि देश की जनता पर्याप्त संख्या में क्रांतिकारियों का समर्थन कर रही है। इस तरह से इसके लिए गांधी जी हमारी बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने इस प्रश्न पर विवाद खड़ा किया और इस प्रकार संसार को दिखा दिया कि कांग्रेस, जो अहिंसा का गढ़ माना जाता है, यह संपूर्ण नहीं तो एक हद तक तो कांग्रेस से अधिक क्रांतिकारियों के साथ है।

इस विषय में गांधी जी ने जो विजय प्राप्त की वह एक प्रकार की हार ही के बराबर थी और अब वे श्दि कल्ट ऑफ दि बम' लेख द्वारा क्रांतिकारियों पर दूसरा हमला कर बैठे हैं। इस संबंध में आगे कुछ कहने से पूर्व इस लेख पर हम अच्छी तरह विचार करेंगे। इस लेख में उन्होंने तीन बातों का उल्लेख किया है। उनका विश्वास, उनके विचार और उनका मत। हम उनके विश्वास के संबंध में विश्लेषण नहीं करेंगे, क्योंकि विश्वास में तर्क के लिए स्थान नहीं है। गांधी जी जिसे हिंसा कहते हैं और जिसके विरुद्ध उन्होंने जो तर्कसंगत विचार प्रकट किए हैं, हम उनका सिलसिलेवार विश्लेषण करें।

गांधी जी सोचते हैं कि उनकी यह धारणा सही है कि अधिकतर भारतीय जनता को हिंसा की भावना छू तक नहीं गई है और अहिंसा उनका राजनीतिक शस्त्र बन गया है। हाल ही में उन्होंने देश का जो भ्रमण किया है उस अनुभव के आधार पर उनकी यह धारणा बनी है, परंतु उन्हें अपनी इस यात्रा के इस अनुभव से इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। यह बात सही है कि (कांग्रेस) नेता अपने दौरे वहीं तक सीमित रखता है जहाँ तक डाक गाड़ी उसे आराम से पहुँचा सकती है, जबकि गांधी जी ने अपनी यात्रा का दायरा वहाँ तक बढ़ा दिया है जहाँ तक कि मोटरकार द्वारा वे जा सके। इस यात्रा में वे धनी व्यक्तियों के ही निवास स्थानों पर रुके। इस यात्रा का अधिकतर समय उनके भक्तों द्वारा आयोजित गोष्ठियों में की गई उनकी प्रशंसा, सभाओं में यदा-कदा अशिक्षित जनता को दिए जाने वाले दर्शनों में बीता, जिसके विषय में उनका दावा है कि वे उन्हें अच्छी तरह समझते हैं, परंतु यही बात इस दलील के विरुद्ध है

कि ये आम जनता की विचारधारा को जानते हैं।

कोई व्यक्ति जनसाधारण की विचारधारा को केवल मंचों से दर्शन और उपदेश देकर नहीं समझ सकता। वह तो केवल इतना ही दावा कर सकता है कि उसने विभिन्न विषयों पर अपने विचार जनता के सामने रखे। क्या गांधी जी ने इन वर्षों में आम जनता के सामाजिक जीवन में भी कभी प्रवेश करने का प्रयत्न किया? क्या कभी उन्होंने किसी संध्या को गाँव की किसी चौपाल के अलाव के पास बैठकर किसी किसान के विचार जानने का प्रयत्न किया? क्या किसी कारखाने के मजदूर के साथ एक भी शाम गुजारकर उसके विचार समझने की कोशिश की है? पर हमने यह किया है और इसलिए हम दावा करते हैं कि हम आम जनता को जानते हैं। हम गांधी जी को विश्वास दिलाते हैं कि साधारण भारतीय साधारण मानव के समान ही अहिंसा तथा अपने शत्रु से प्रेम करने की आध्यात्मिक भावना को बहुत कम समझता है। संसार का तो यही नियम है-तुम्हारा एक मित्र है, तुम उससे स्नेह करते हो, कभी-कभी तो इतना अधिक कि तुम उसके लिए अपने प्राण भी दे देते हो। तुम्हारा शत्रु है, तुम उससे किसी प्रकार का संबंध नहीं रखते हो। क्रांतिकारियों का यह सिद्धांत नितांत सत्य, सरल और सीधा है और यह ध्रुव सत्य आदम और हौवा के समय से चला आ रहा है तथा इसे समझने में कभी किसी को कठिनाई नहीं हुई। हम यह बात स्वयं के अनुभव के आधार पर कह रहे हैं। वह दिन दूर नहीं जब लोग क्रांतिकारी विचारधारा को सक्रिय रूप देने के लिए हजारों की संख्या में जमा होंगे।

गांधी जी घोषणा करते हैं कि अहिंसा के सामर्थ्य तथा अपने आपको पीड़ा देने की प्रणाली से उन्हें यह आशा है कि वे एक दिन विदेशी शासकों का हृदय परिवर्तन कर अपनी विचारधारा का उन्हें अनुयायी बना लेंगे। अब उन्होंने अपने सामाजिक जीवन की इस चमत्कार की प्रेम संहिता के प्रचार के लिए अपने आपको समर्पित कर दिया है। वे अडिग विश्वास के साथ उसका प्रचार कर रहे हैं, जैसा कि उनके कुछ अनुयायियों ने भी किया है। परंतु क्या वे बता सकते हैं कि भारत में कितने शत्रुओं का हृदय-परिवर्तन कर वे उन्हें भारत का मित्र बनाने में समर्थ हुए हैं? वे कितने ओडायरों, डायरों तथा रीडिंग और इरविन को भारत का मित्र बना सके हैं? यदि किसी को भी नहीं तो भारत उनकी इस विचारधारा से कैसे सहमत हो सकता है कि वे इंग्लैंड को अहिंसा द्वारा समझा-बुझाकर इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार कर लेंगे कि वह भारत को स्वतंत्रता दे दे।

यदि वाइसराय की गाड़ी के नीचे बमों का ठीक से विस्फोट हुआ होता तो दो में से एक बात अवश्य हुई होती, या तो वाइसराय अत्यधिक घायल हो जाते या उनकी मृत्यु हो गई होती। ऐसी स्थिति में वाइसराय तथा राजनीतिक दलों के नेताओं के बीच मंत्रणा न हो पाती, यह प्रयत्न रुक जाता और उससे राष्ट्र का भला ही होता। कलकत्ता कांग्रेस की चुनौती के बाद भी स्वशासन की भीख माँगने के लिए वाइसराय भवन के आसपास मँडराने वालों के ये घृणास्पद प्रयत्न विफल हो जाते। यदि बमों का ठीक से विस्फोट हुआ होता तो भारत का एक शत्रु उचित सजा पा जाता। मेरठ तथा लाहौर षड्यंत्र और भुसावल कांड का मुकदमा चलाने वाले केवल भारत के शत्रुओं को ही मित्र प्रतीत हो सकते हैं। साइमन कमीशन के सामूहिक विरोध से देश में जो एकजुटता स्थापित हो गई थी, गांधी तथा नेहरू की राजनीतिक बुद्धिमता के बाद ही इरविन उसे छिन्न-भिन्न करने में समर्थ हो सका। आज कांग्रेस में भी आपस में फूट पड़ गई है। हमारे इस दुर्भाग्य के लिए बाइसराय या उसके चाटुकारों के सिवा कोन जिम्मेदार हो सकता है। इस पर भी हमारे देश में ऐसे लोग हैं जो उसे भारत का मित्र कहते हैं।

देश में ऐसे भी लोग होंगे जिन्हें कांग्रेस के प्रति श्रद्धा नहीं, इससे वे कुछ आशा भी नहीं करते। यदि गांधी जी क्रांतिकारियों को उस श्रेणी में गिनते हैं तो वे उनके साथ अन्याय करते हैं। वे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि कांग्रेस ने जन जागृति का महत्वपूर्ण कार्य किया है। उसने आम जनता में स्वतंत्रता की भावना जाग्रत की है क्योंकि उनका यह दृढ विश्वास कि जब तक कांग्रेस में सेन गुप्ता जैसे 'अद्‌भुत' प्रतिभाशाली व्यक्तियों का, जो की ट्रेन उड़ाने में गुप्तचर विभाग का हाथ होने की बात करते हैं, तथा अंसारी जैसे लोग जो राजनीति कम जानते हैं और उचित तर्क की उपेक्षा कर बेतुकी और तर्कहीन दलील देकर यह कहते हैं। कि किसी राष्ट्र ने बम से स्वतंत्रता नहीं प्राप्त की जब तक कांग्रेस के निर्णयों में इनके जैसे विचारों का प्राधान्य रहेगा, तब तक देश उससे बहुत कम आशा कर सकता है। क्रांतिकारी तो उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब कांग्रेसी आंदोलन से अहिंसा की यह सनक समाप्त हो जाएगी और वह क्रांतिकारियों के कंधे से कंधा मिलाकर पूर्ण स्वतंत्रता के सामूहिक लक्ष्य की ओर बढ़ेगी। इस वर्ष कांग्रेस ने इस सिद्धांत को स्वीकार कर लिया है, जिसका प्रतिपादन क्रांतिकारी पिछले 25 वर्षों से करते चले आ रहे हैं। हम आशा करें कि अगले वर्ष वह स्वतंत्रता प्राप्ति के तरीकों का भी समर्थन करेगी।

गांधी जी यह प्रतिपादित करते हैं कि जब-जब हिंसा का प्रयोग हुआ है तब-तब सैनिक खर्च बढ़ा है। यदि उनका मंतव्य क्रांतिकारियों की पिछली 25 वर्षों की गतिविधियों

से है तो हम उनके वक्तव्य को चुनौती देते हैं कि वे अपने इस कथन को तथ्य और आंकड़ों से सिद्ध करें। बल्कि हम तो यह कहेंगे कि उनके अहिंसा और सत्याग्रह के प्रयोगों का परिणाम, जिनकी तुलना स्वतंत्रता संग्राम से नहीं की जा सकती, नौकरशाही अर्थव्यवस्था पर हुआ है। आंदोलनों का फिर वे हिंसात्मक हों या अहिंसात्मक, सफल हों या असफल, परिणाम तो भारत की अर्थव्यवस्था पर होगा ही।

हमें समझ नहीं आता कि देश में सरकार ने जो विभिन्न वैधानिक सुधार किए, गांधी जी उनमें हमें क्यों उलझाते हैं? उन्होंने मार्ले-मिंटो रिफार्म, मांटेग्यू रिफार्म या ऐसे ही अन्य सुधारों की न तो कभी परवाह की और न ही उनके लिए आंदोलन किया। ब्रिटिश सरकार ने तो यह टुकड़े वैधानिक आंदोलनकारियों के सामने फेंके थे, जिससे उन्हें उचित मार्ग पर चलने से पथभ्रष्ट किया जा सके। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें तो यह घूस दी थी, जिससे वे क्रांतिकारियों को समूल नष्ट करने की उनकी नीति के साथ सहयोग करें। गांधी जी जैसा कि इन्हें संबोधित करते हैं, कि भारत के लिए ये खिलौने-जैसे हैं, उन लोगों को बहलाने-फुसलाने के लिए जो समय-समय पर होम रूल, स्वशासन, जिम्मेदार सरकार, पूर्ण जिम्मेदार सरकार, औपनिवेशिक स्वराज्य जैसे अनेक वैधानिक नाम जो गुलामी हैं, माँग करते हैं। क्रांतिकारियों का लक्ष्य तो शासन सुधार का नहीं है, वे तो स्वतंत्रता का स्तर कभी का ऊँचा कर चुके हैं और वे उसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बिना किसी हिचकिचाहट के बलिदान कर रहे हैं। उनका दावा है कि उनके बलिदानों ने जनता की विचारधारा में प्रचंड परिवर्तन किया है। उसके प्रयत्नों से वे देश को स्वतंत्रता के मार्ग पर बहुत आगे बढ़ा ले गए हैं और यह बात उनसे राजनीतिक क्षेत्र में मतभेद रखने वाले लोग भी स्वीकार करते हैं।

गांधी जी का कथन है कि हिंसा से प्रगति का मार्ग अवरुद्ध होकर स्वतंत्रता पाने का दिन स्थगित होता जाता है, तो हम इस विषय में अनेक ऐसे उदाहरण दे सकते हैं, जिनमें जिन देशों ने हिंसा से काम लिया उनकी सामाजिक प्रगति होकर उन्हें राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई। हम रूस तथा तुर्की का ही उदाहरण लें। दोनों ने हिंसा के उपायों से ही सशस्त्र क्रांति द्वारा सत्ता प्राप्त की। उसके बाद भी सामाजिक सुधारों के कारण वहाँ की जनता ने बड़ी तीव्र गति से प्रगति की। एकमात्र अफगानिस्तान के उदाहरण से राजनीतिक सूत्र सिद्ध नहीं किया जा सकता। यह तो अपवाद मात्र है।

गांधी जी के विचार में "असहयोग आंदोलन के समय जो जनजागृति हुई है वह अहिंसा के उपदेश का ही परिणाम था" परंतु यह धारणा गलत है और यह श्रेय अहिंसा को देना भी भूल है, क्योंकि जहाँ भी अत्यधिक जन जागृति हुई वह सीधे मोर्चे की कार्रवाई से हुई। उदाहरणार्थ रूस में शक्तिशाली जन आंदोलन से ही वहाँ किसान और मजदूरों में जागृति उत्पन्न हुई। उन्हें तो किसी ने अहिंसा का उपदेश नहीं दिया था, बल्कि हम तो यहाँ तक कहते कि अहिंसा तथा गांधी जी की समझौता-नीति से ही उन शक्तियों में फूट पड़ गई जो सामूहिक मोर्चे के नारे से एक हो गई थीं। यह प्रतिपादित किया जाता है कि राजनीतिक अन्यायों का मुकाबला अहिंसा के शस्त्र से किया जा सकता है, पर इस विषय में संक्षेप में तो यही कहा जा सकता है कि यह अनोखा विचार है, जिसका अभी प्रयोग नहीं हुआ है।

दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के जो न्यायोचित अधि कार माँगे जाते थे, उन्हें प्राप्त करने में अहिंसा का शस्त्र असफल रहा। वह भारत को स्वराज्य दिलाने में भी असफल रहा, जबकि राष्ट्रीय कांग्रेस स्वयंसेवकों की एक बड़ी सेना उसके लिए प्रयत्न करती रही तथा उस पर लगभग सवा करोड़ रुपया भी खर्च किया गया। हाल ही में बारदोली सत्याग्रह में इसकी असफलता सिद्ध हो चुकी है। इस अवसर पर सत्याग्रह के नेता गांधी और पटेल ने बारदोली के किसानों को जो कम-से-कम अधिकार दिलाने का आश्वासन दिया था, उसे भी वे न दिला सके। इसके अतिरिक्त अन्य किसी देशव्यापी आंदोलन की बात हमें मालूम नहीं अब तक इस अहिंसा को एक ही आशीर्वाद मिला और वह था असफलता का। ऐसी स्थिति में यह आश्चर्य नहीं कि देश ने फिर उनके प्रयोग से इंकार कर दिया। वास्तव में गांधी जी जिस रूप में सत्याग्रह का प्रचार करते हैं, वह एक प्रकार का आंदोलन है, एक विरोध है जिसका स्वाभाविक परिणाम समझौते में होता है, जैसा कि प्रत्यक्ष देखा गया है। इसलिए जितनी जल्दी हम समझ लें कि स्वतंत्रता और गुलामी में कोई समझौता नहीं हो सकता, उतना ही अच्छा है।

गांधी जी सोचते हैं हम नए युग में प्रवेश कर रहे हैं। परंतु कांग्रेस विधान में शब्दों का हेर-फेर मात्र कर, अर्थात् स्वराज्य को पूर्ण स्वतंत्रता कह देने से नया युग प्रारंभ नहीं हो जाता। वह दिन वास्तव में एक महान दिवस होगा जब कांग्रेस देशव्यापी आंदोलन प्रारंभ करने का निर्णय करेगी, जिसका आधार सर्वमान्य क्रांतिकारी सिद्धांत होंगे। ऐसे समय तक स्वतंत्रता का झंडा फहराना हास्यास्पद होगा। इस विषय में हम सरलादेवी चौधरानी के उन विचारों से सहमत हैं जो उन्होंने एक पत्र संवाददाता को भेंट में व्यक्त किए। उन्होंने कहा 31 दिसंबर, 1929 की अर्धरात्रि के ठीक एक मिनट बाद स्वतंत्रता का झंडा फहराना एक विचित्र घटना है। उस समय जी.ओ.सी. असिस्टेंट जी.ओ.सी. तथा अन्य

लोग इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि स्वतंत्रता का झंडा फहराने का निर्णय आधी रात तक अधर में लटका है, क्योंकि यदि वाइसराय या सेक्रेटरी ऑफ स्टेट का कांग्रेस को यह संदेश आ जाता है कि भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया गया है, तो रात्रि को 11 बजकर 59 मिनट पर भी स्थिति में परिवर्तन हो सकता था। इससे स्पष्ट है कि पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्ति का ध्येय नेताओं की हार्दिक इच्छा नहीं थी, बल्कि एक बालहठ के समान था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए उचित तो यही होता कि वह पहले स्वतंत्रता प्राप्त कर फिर उसकी घोषणा करती। यह सच है कि अब औपनिवेशिक स्वराज्य के बजाय कांग्रेस के वक्ता जनता के सामने पूर्ण स्वतंत्रता का ढोल पीटेंगे। वे अब जनता से कहेंगे कि जनता को उस संघर्ष के लिए तैयार हो जाना चाहिए जिसमें एक पक्ष तो मुक्केबाजी करेगा और दूसरा उन्हें केवल सहता रहेगा, जब तक कि वह खूब पिटकर इतना हताश न हो जाए कि फिर न उठ सके? क्या उसे संघर्ष कहा जा सकता है और क्या इससे देश को स्वतंत्रता मिल सकती है? किसी भी राष्ट्र के लिए सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्ति का ध्येय सामने रखना अच्छा है, परंतु साथ में यह भी आवश्यक है इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उन साधनों का उपयोग किया जाए जो योग्य हों और जो पहले उपयोग में आ चुके हों, अन्यथा संसार के सम्मुख हमारे हास्यास्पद बनने का भय बना रहेगा।

गांधी जी ने सभी विचारशील लोगों से कहा कि वे लोग क्रांतिकारियों से सहयोग करना बंद कर दें तथा उनके कार्यों की निंदा करें, जिससे हमारे इस प्रकार उपेक्षित देशभक्तों की हिंसात्मक कार्यों से जो हानि हुई, उसे समझ सकें। लोगों को उपेक्षित तथा पुरानी दलीलों के समर्थक कह देना जितना आसान है, उसी प्रकार उनकी निंदा कर जनता से उनसे सहयोग न करने को कहना, जिससे वे अलग-अलग हो अपना कार्यक्रम स्थगित करने के लिए बाध्य हो जाएँ, यह सब करना विशेष रूप से उस व्यक्ति के लिए आसान होगा जो कि जनता के कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों का विश्वासपात्र हो। गांधी जी ने जीवन भर जनजीवन का अनुभव किया है, पर यह बड़े दुख की बात है कि वे भी क्रांतिकारियों का मनोविज्ञान न तो समझते हैं और न समझना ही चाहते हैं वह सिद्धांत अमूल्य है, जो प्रत्येक क्रांतिकारी को प्रिय है। जो व्यक्ति क्रांतिकारी बनता है, जब वह अपना सिर हथेली पर रखकर किसी क्षण भी आत्मबलिदान के लिए तैयार रहता है तो वह केवल खेल के लिए नहीं। वह यह त्याग और बलिदान इसलिए भी नहीं करता कि जब जनता उसके साथ सहानुभूति दिखाने की स्थिति में हो तो उसकी जयजयकार करे। वह इस मार्ग का इसलिए अवलंबन करता है कि उसका सद्विवेक उसे इसकी प्रेरणा देता है, उसकी आत्मा उसे इसके लिए प्रेरित करती है।

एक क्रांतिकारी सबसे अधिक तर्क में विश्वास करता है। वह केवल तर्क और तर्क में ही विश्वास करता है। किसी प्रकार का गाली-गलौच या निंदा, चाहे फिर वह ऊँचे-से-ऊँचे स्तर से की गई हो, उसे अपने निश्चित उद्देश्य प्राप्ति से वंचित नहीं कर सकती। यह सोचना कि जनता का सहयोग न मिला या उसके कार्य की प्रशंसा न की गई तो वह अपने उद्देश्य को छोड़ देगा, निरी मूर्खता है। अनेक क्रांतिकारी, जिनके कार्यों की वैज्ञानिक आंदोलनकारियों ने घोर निंदा की, फिर भी वे उसकी परवाह न कर फाँसी के तख्ते पर झूल गए। यदि तुम चाहते हो कि क्रांतिकारी अपनी गतिविधियों को स्थगित कर दें तो उसके लिए होना तो यह चाहिए कि उनके साथ तर्क द्वारा अपना मत प्रमाणित किया जाए। यह एक और केवल यही एक रास्ता है, और बाकी बातों के विषय में किसी को संदेह नहीं होना चाहिए। क्रांतिकारी इस प्रकार के डराने-धमकाने में कदापि हार मानने वाला नहीं।

हम प्रत्येक देशभक्त से निवेदन करते हैं कि वह हमारे साथ गंभीरतापूर्वक इस युद्ध में शामिल हो कोई भी व्यक्ति अहिंसा और ऐसे ही अजीबोगरीब तरीकों से मनोवैज्ञानिक प्रयोग कर राष्ट्र की स्वतंत्रता के नाथ खिलवाड़ न करें। स्वतंत्रता राष्ट्र का प्राण है। हमारी गुलामी हमारे लिए लज्जास्पद है, न जाने कब हममें यह बुद्धि और साहस होगा कि हम उससे मुक्ति प्राप्त कर स्वतंत्र हो सकें? हमारी प्राचीन सभ्यता और गौरव की विरासत का क्या लाभ, यदि हममें स्वा?भिमान न रहे कि हम विदेशी गुलामी, विदेशी झंडे और बादशाह के सामने सिर झुकाने से अपने आपको न रोक सकें।

क्या यह अपराध नहीं है कि ब्रिटेन ने भारत में अनैतिक शासन किया? हमें भिखारी बनाया, तया हमारा समस्त खून चूस लिया? एक जाति और मानवता के नाते हमारा घोर अपमान तथा शोषण किया गया है। क्या जनता अब भी चाहती है कि इस अपमान को भुलाकर हम ब्रिटिश शासकों को क्षमा कर दें। हम बदला लेंगे, जो जनता द्वारा शासकों से लिया गया न्यायोचित बदला होगा। कायरों को पीठ दिखाकर समझौता और शांति की आशा से चिपके रहने दीजिए। हम किसी से भी दया की भिक्षा नहीं माँगते हैं और हम भी किसी को क्षमा नहीं करेंगे। हमारा युद्ध विजय या मृत्यु के निर्णय तक चलता ही रहेगा। क्रांति चिरंजीवी हो।

साभार: चमन लाल (स.), शहीद भगत सिंह: दस्तावेजों के आईने में, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 2007, पृव 163-171.

प्रो. रसाल सिंह

भगत सिंह और भाषा एवं लिपि का प्रश्न

भगत सिंह के चिंतन के केंद्र में केवल देश की स्वतंत्रता ही नहीं थी। उनकी दृष्टि में भाषा, लिपि और सांस्कृतिक एकीकरण जैसे सूक्ष्म विषय भी थे। एक अंतर्दृष्टि

भारतीय भाषाएँ औपनिवेशिक भाषा अंग्रेजी से आज भी आशंकित, आक्रांत और असुरक्षित हैं। वह धीरे-धीरे भारतीय भाषाओं को लीलती जा रही है। अंग्रेजी का वर्चस्व और अंग्रेजी माध्यम की अनिवार्यता आज की बड़ी चुनौती है।

दलितों-पिछड़ों, गाँवों-गरीबों और किसानों के करोड़ों बच्चे देश के विकास में पूर्ण योगदान इसलिए नहीं दे पा रहे हैं, क्योंकि अंग्रेजी माध्यम की क्रमशः बढ़ती अनिवार्यता ने उनकी संभावनाओं का संकुचन कर दिया है। इसलिए अंग्रेजी के वर्चस्व और अंग्रेजी मानसिकता का प्रतिरोध जरूरी है। अंग्रेजी एक भाषा या विषय मात्र नहीं, बल्कि औपनिवेशिक श्रेष्ठता-बोध और सांस्कृतिक वर्चस्ववाद का प्रतीक है। अंग्रेजी को अंतरराष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में तो अपनाया जा सकता है, लेकिन शिक्षा के माध्यम या भारत की संपर्क भाषा के रूप में उसे नहीं थोपा जाना चाहिए। भारत की वाणी भारतीय भाषाएँ ही हो सकती हैं। मातृभाषा में शिक्षण शिक्षार्थी की बौद्धिक क्षमताओं के अधिकतम विकास और भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह भारत को वैश्विक ज्ञान शक्ति अर्थात विश्वगुरु बनाने की महत्वाकांक्षी परियोजना की आधारशिला है। भारत के सांस्कृतिक गौरव की प्रतिष्ठा का प्रस्थान-बिंदु भारतीय भाषाओं का पारस्परिक संपर्क, संवाद और संगठन है।

आधुनिक हिंदी के निर्माता भारतेंदु हरिश्चंद्र का बलिया व्याख्यान इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। अपने इसी प्रसिद्ध व्याख्यान में उन्होंने "निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल"[1] कहकर मातृभाषा का महत्व प्रतिपादित किया। उल्लेखनीय है कि तमाम साहित्यकारों, सत्याग्रहियों और क्रांतिकारियों ने हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक हथियार की तरह आजमाया। शहीदे-आजम सरदार भगत सिंह उनमें से प्रमुख थे। औपनिवेशिक दासता और पश्चिमी वर्चस्व के खिलाफ लड़ाई में हिंदी भाषा की केंद्रीय भूमिका रही। आज एक बार फिर अंग्रेजी वर्चस्ववाद से निपटने के लिए भारतीय भाषाओं को एक-दूसरे के निकट आने की आवश्यकता है। मार्क्स और मैकाले पुत्रों के कुपाठ के बरक्स भारतीय चिंतन और भारतीय भाषाओं को प्रतिष्ठापित करने की आवश्यकता है। उनके संगठन, समन्वय और समरसता द्वारा ही अंग्रेजी भाषा और औपनिवेशिक चिंतन की चुनौती से निपटा जा सकता है।

आज भारतीय भाषाओं के आपसी अपरिचय और अलगाव को मिटाने की दिशा में प्रयत्नशील होने की आवश्यकता है। भारतीय भाषाओं के विकास, प्रचार-प्रसार और आपसी संपर्क-संवाद में देवनागरी लिपि की निर्णायक भूमिका हो सकती है। तमाम भारतीय भाषाओं के श्रेष्ठतम साहित्य को देवनागरी लिपि में लिप्यांतरित करके बहुसंख्यक और व्यापक हिंदी समाज तक लाने की जरूरत है।

राष्ट्रलिपि की आवश्यकता और संभावना पर विचार करते हुए भगत सिंह के भाषा और लिपि विषयक चिंतन को जानना बहुत उपयोगी होगा। सन् 1924-25 के दौरान पंजाब में भाषा और लिपि संबंधी विवाद चल रहा था। पंजाबी भाषा की लिपि के रूप में किस लिपि को अपनाया जाए, यह विचारणीय बिंदु था। इस विषय पर सरदार भगत सिंह ने एक लंबा और सारगर्भित निबंध लिखा था। इस निबंध का उल्लेख करते हुए यशपाल 'सिंहावलोकन' में

लिखते हैं- "सन् 1925 की एक घटना याद है। पंजाब में हिंदी साहित्य सम्मेलन की नई-नई स्थापना हुई थी। उर्दू प्रधान लाहौर में हिंदी सम्मेलन की ओर बहुत कम लोगों की रुचि थी। ...सम्मेलन ने किसी एक विषय पर सर्वोत्तम निबंध लिखने के लिए पचास रुपये के पुरस्कार की घोषणा की थी। ...निर्णायकों ने तीन निबंधों को एक ही कोटि का ठहराया था। ...उन तीन निबंधों में से एक निबंध मेरा था। ...दूसरा निबंध भगत सिंह का था और तीसरा निबंध जयचंद्र जी (हिंदी साहित्य सम्मेलन के एक अधिकारी) की भांजी का था।"[2] भगत सिंह द्वारा लिखे गए निबंध का शीर्षक 'पंजाबी की भाषा और लिपि की समस्या' था। यह लेख हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री श्री भीमसेन विद्यालंकार ने सुरक्षित रखा और भगतसिंह के बलिदान के बाद 28 फरवरी, 1933 के 'हिंदी संदेश' में प्रकाशित किया।[3]

इस निबंध की शुरुआत में भगत सिंह साहित्य और समाज का पारस्परिक संबंध स्पष्ट करते हुए उसका महत्व रेखांकित करते हैं-

"जिस देश के साहित्य का प्रवाह जिस ओर बहा, ठीक उसी ओर वह देश भी अग्रसर होता रहा। किसी भी जाति के उत्थान के लिए ऊँचे साहित्य की आवश्यकता हुआ करती है। ज्यों-ज्यों देश का साहित्य ऊँचा होता जाता है, त्यों-त्यों देश भी उन्नति करता जाता है। देशभक्त, चाहे वे निरे समाज-सुधारक हों अथवा राजनीतिक नेता, सबसे अधिक ध्यान देश के साहित्य की ओर दिया करते हैं। यदि वे सामाजिक समस्याओं तथा परिस्थितियों के अनुसार नवीन साहित्य की सृष्टि न करें तो उनके सब प्रयत्न निष्फल हो जाएँ और उनके कार्य स्थायी न हो पाएँ।"[4]

ठीक यही बात हिंदी के प्रतिष्ठित विद्वानों ने भी कही है। बालकृष्ण भट्ट ने 'साहित्य को जनसमूह के हृदय का विकास' माना है तो आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेद्वी उसे 'समाज का दर्पण' मानते हैं। उल्लेखनीय है कि किशोर भगत सिंह ने अपने निबंध में साहित्य के विषय में जो महत्वपूर्ण बात लिखी है वैसी ही बात लगभग एक दशक बाद आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपनी ऐतिहासिक महत्व की पुस्तक 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखी है-

"प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। ...जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है।"[5]

साहित्य से भगत सिंह का आशय रचनात्मक लेखन मात्र से नहीं है। वे वैचारिक लेखन को भी अनिवार्यत: साहित्य की श्रेणी में रखते हैं। वे न सिर्फ स्वयं प्रचुर मात्रा में क्रांतिकारी साहित्य लिखते हैं, बल्कि वीर सावरकर की अंग्रेजों द्वारा प्रतिबंधित पुस्तक '1857 का स्वातंत्र्य समर' जैसी पुस्तकों का विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराकर बाँटते हैं। इसीलिए वे अपने इस निबंध में मेजिनी, रूसो वाल्तेयर, तोलस्तोय, मैक्सिम गोर्की और कार्ल मार्क्स आदि का उदाहरण देकर इटली के एकीकरण, फ्रांस की राज्य-क्रांति और रूसी क्रांति में क्रमश: उनके योगदान को रेखांकित करते हैं। वे गुरु नानकदेव, गुरु अंगददेव, गुरु अर्जुन देव और गुरु तेगबहादुर जी के साहित्य से उद्धरण देते हुए सिख समाज के संगठन में उसकी भूमिका बताते हैं। इस क्रम में वे बाबा बंदा बहादुर, स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, देवेंद्र नाथ ठाकुर, केशवचंद्र सेन, गुरु ज्ञान सिंह, स्वामी दयानंद सरस्वती और महात्मा हंसराज का भी उल्लेख करते हैं। राष्ट्रीय जीवन के उत्थान और दिशा-निर्देशन में साहित्य की भूमिका को रेखांकित करते हुए मुंशी प्रेमचंद ने प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ में आयोजित प्रथम सम्मेलन (1936) की अध्यक्षता करते हुए कहा था - "वह (साहित्यकार) देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।"[6] रामचंद्र शुक्ल और प्रेमचंद जैसे वरिष्ठ और परिपक्व साहित्यकार भगत सिंह के साहित्य संबंधी चिंतन की ही पुष्टि करते नजर आते हैं। उनकी पुष्टि भगत सिंह की वैचारिक प्रौढ़ता का प्रमाण है।

भगत सिंह पंजाब में एक सर्व-स्वीकृत लिपि न होने और भाषा को 'मजहबी समस्या' बना देने पर चिंता व्यक्त करते हुए लिखते हैं-

"...यहाँ के मुसलमानों ने उर्दू को अपनाया। मुसलमानों में भारतीयता का सर्वथा अभाव है, इसीलिए वे समस्त भारत में भारतीयता का महत्व न समझकर अरबी लिपि तथा फारसी भाषा का प्रचार करना चाहते हैं। समस्त भारत की एक भाषा और वह भी हिंदी होने का महत्व उनकी समझ में नहीं आता। इसलिए वे तो अपनी उर्दू की रट लगाते रहे और एक ओर बैठ गए।"[7]

वे सिक्खों की भाषा संबंधी संकीर्णता और पूर्वग्रह की भी खबर लेते हुए आगे लिखते हैं-

"उनका सारा साहित्य गुरुमुखी में है। भाषा में अच्छी-खासी हिंदी है, परंतु मुख्य पंजाबी भाषा है। इसलिए सिक्खों ने गुरुमुखी लिपि में लिखी जाने वाली पंजाबी भाषा को ही अपना लिया। वे उसे किसी तरह छोड़ न सकते थे। वे उसे मजहबी भाषा बनाकर उससे चिपट गए।"[8]

उल्लेखनीय है कि उस दौर में भाषा और लिपि के संबंध में पंजाब में तीन मत प्रचलित थे- पहला, मुसलमानों का उर्दू भाषा और अरबी लिपि संबंधी कट्टर मत; दूसरा आर्यसमाजियों और हिंदुओं का हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि संबंधी मत; और तीसरा सिक्खों का पंजाबी भाषा और गुरुमुखी

जिस देश के साहित्य का प्रवाह जिस ओर बहा, ठीक उसी ओर वह देश भी अग्रसर होता रहा। किसी भी जाति के उत्थान के लिए ऊँचे साहित्य की आवश्यकता हुआ करती है। ज्यों-ज्यों देश का साहित्य ऊँचा होता जाता है, त्यों-त्यों देश भी उन्नति करता जाता है। देशभक्त, चाहे वे निरे समाज-सुधारक हों अथवा राजनीतिक नेता, सबसे अधिक ध्यान देश के साहित्य की ओर दिया करते हैं

लिपि संबंधी मत। भगत सिंह इस तत्कालीन वास्तविकता से अनभिज्ञ न थे। लेकिन वे राष्ट्रीय एकीकरण और राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में एक भाषा और एक लिपि की आवश्यकता और महत्व से भी बखूबी परिचित थे। वे लिखते हैं-

"इस समय सबसे मुख्य प्रश्न भारत को एक राष्ट्र बनाना है। एक राष्ट्र बनाने के लिए एक भाषा होना आवश्यक है, परंतु यह एकदम हो नहीं सकता। उसके लिए कदम-कदम चलना पड़ता है। यदि हम सभी भारत की एक भाषा नहीं बना सकते तो कम-से-कम लिपि तो एक बना देनी चाहिए।"[9]

वे अलग-अलग धार्मिक/ उपजातीय समुदायों द्वारा अलग-अलग भाषा के प्रति अति-आग्रही होने को राष्ट्रीय एकीकरण की राह का रोड़ा मानते हैं। इससे तमाम भारतीयों के एक-दूसरे के निकट आने की जगह अलग-थलग हो जाने का खतरा उन्हें साफ दिखाई देता है। वे मानते हैं कि 'भारतोद्धार' तभी हो सकेगा जब मुसलमान आदि समुदाय अपने मजहब पर पक्के रहते हुए भारतीय बन जाएँ। दरअसल, भाषा और लिपि के प्रश्न को सांप्रदायिक या जातीय नजरिये से देखने से समस्या खड़ी होती है। भाषा-समस्या के समाधान के लिए राष्ट्रीय दृष्टिकोण की आवश्यकता है। भाषा और लिपि के संबंध में अपने राष्ट्रीय दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए भगत सिंह लिखते हैं-

"समस्त देश में एक भाषा, एक लिपि, एक साहित्य, एक आदर्श और एक राष्ट्र बनाना पड़ेगा, परंतु समस्त एकताओं से पहले एक भाषा का होना जरूरी है ताकि हम एक-दूसरे को भली-भाँति समझ सकें। एक पंजाबी और एक मद्रासी इकट्ठे बैठकर केवल एक-दूसरे का मुँह ही न ताका करें, बल्कि एक-दूसरे के विचार तथा भाव जानने का प्रयत्न करें,परंतु यह पराई भाषा अंग्रेजी में नहीं, बल्कि हिंदुस्तान की अपनी भाषा हिंदी में।"[10]

आगे वे गुरुमुखी लिपि और उर्दू (अरबी लिपि) की सीमाओं का संकेत करते हुए हिंदी (देवनागरी) लिपि को अपनाने की प्रस्तावना करते हैं-

"यह लिपि तो उर्दू से भी अधिक अपूर्ण है और जब हमारे सामने वैज्ञानिक सिद्धांतों पर निर्भर सर्वांग संपूर्ण हिंदी (देवनागरी) विद्यमान है, फिर उसे अपनाने में हिचक क्या? गुरुमुखी लिपि तो हिंदी अक्षरों का ही बिगड़ा हुआ रूप है।...सर्वांग संपूर्ण लिपि को अपनाते ही पंजाबी भाषा उन्नति करना शुरू कर देगी...। ...निश्चय ही, हिंदी भाषा ही अंत में समस्त भारत की एक भाषा बनेगी...हिंदी लिपि के अपनाने से ही पंजाबी हिंदी-सी बन जाती है। फिर तो कोई भेद ही नहीं रहेगा और इसकी जरूरत है, इसलिए कि सर्वसाधारण को शिक्षित किया जा सके और यह अपनी भाषा के अपने साहित्य से ही हो सकता है।"[11]

पंजाबी आदि सभी भारतीय भाषाओं द्वारा राष्ट्रलिपि या संपर्क लिपि के रूप में देवनागरी लिपि को अपनाने की बात भगत सिंह के अलावा लोकमान्य तिलक, महर्षि दयानंद सरस्वती, महात्मा गाँधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, आचार्य विनोबा भावे, कृष्णस्वामी आयंगर, मुहम्मद करीम छागला और बिनेश्वर ब्रह्म जैसे अनेक महापुरुषों ने समय-समय पर की है। राष्ट्रलिपि के बारे में सर्वप्रथम सार्वजनिक रूप से बालकृष्ण भट्ट ने 1 अप्रैल, 1882 को हिंदी प्रदीप के संपादकीय में लिखा था- "यदि नगराक्षर संपूर्ण भारतवर्ष के राजकार्य में प्रचलित किए जाएँ, तो कैसी अच्छी बात हो...दरबार में फारसी अक्षरों की जगह नागरी में लिखा-पढ़ी हो और सब हिंदी, उर्दू, मराठी पंजाबी आदि की पुस्तकें इसी में छपें।"[12] न्यायमूर्ति शारदाचरण मित्र ने इस दिशा में आगे बढ़ते हुए सन् 1905 में कलकत्ता में लिपि विस्तार परिषद् की स्थापना की। इस संस्था के प्रारंभिक सदस्यों में गुरुदेव रवींद्र नाथ टैगोर भी थे। भारतीय भाषाओं की एक लिपि होने से उनके बीच का अपरिचय, अविश्वास और दूरी मिटेगी। वे एक-दूसरे के अधिक निकट आ सकेंगी। उनके बीच अधिक आत्मीयता पैदा होगी और उनमें बहनापा बढ़ेगा। यह एक दूरगामी महत्व की परियोजना है। संस्कृत से उद्भूत भारतीय भाषाओं और लिपिहीन भाषाओं एवं बोलियों की लिपि के रूप में देवनागरी लिपि को अपनाकर यह शुरुआत की जा सकती है। इसी विचार को प्रस्तावित करते हुए महात्मा गाँधी ने 27 अगस्त, 1925 को 'हिंदी नवजीवन' के अपने संपादकीय में लिखा था- "सारे हिंदुस्तान के लिए एक लिपि का होना एक दूरवर्ती आदर्श है। परंतु उन सब लोगों के लिए जो कि संस्कृत से उत्पन्न होने वाली भाषाएँ जिनमें दक्षिण की भाषाएँ भी शामिल हैं, बोलते हैं; एक लिपि का होना व्यावहारिक आदर्श है, यदि हम सब अपनी प्रांतीयता को दूर कर दें।"[13]

नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने फरवरी 1938 में कांग्रेस के 51 वें हरिपुरा अधिवेशन के अपने अध्यक्षीय संबोधन में राष्ट्रीय एकीकरण के लिए एक संपर्क भाषा और एक राष्ट्रलिपि को अपनाने पर बल दिया था।[14] आज संकीर्ण राजनीति और क्षेत्र/ प्रांतवादी अस्मिताओं से ऊपर उठकर उनके उस स्वप्न को साकार करने की दिशा में आगे बढ़ने का समय है। 'देवनागरी के नवदेवता' बिनेश्वर ब्रह्म ने तो इस स्वप्न के लिए ही अपना प्राणोत्सर्ग भी किया था।

जम्मू-कश्मीर, उत्तर-पूर्व, अंडमान-निकोबार और गोवा आदि की अनेक ऐसी भाषाएँ एवं बोलियाँ हैं जो लिपि न होने के अभाव में अस्तित्वसंकट से जूझ रही हैं। इन क्रमशः विलुप्त हो रही भाषाओं में श्रुत/ मौखिक साहित्य की अत्यंत समृद्ध परंपरा रही है। उस दुर्लभ साहित्य को न सिर्फ संरक्षित करने की आवश्यकता है; बल्कि उसे अब तक अपरिचित रहे व्यापक समाज के बीच ले जाने की भी आवश्यकता है। नयनार-आलवार संतों के साहित्य, जयदेव के गीतगोविंदम्, नानकदेव की गुरुवाणी, शंकरदेव के पदों, लल्लेश्वरी के बाख, तुलसीदास की श्रीरामचरितमानस और गुरुदेव की गीतांजलि को हर साक्षर भारतीय को पढ़ना चाहिए। इससे सामाजिक निकटता और सांस्कृतिक प्रगाढ़ता बढ़ेगी।

तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि जिन भारतीय भाषाओं की अपनी पृथक लिपि है; उनकी सह-लिपि के रूप में देवनागरी लिपि को अपनाने से अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक संकीर्णताओं का निदान हो सकता है। भारत की भाषानीति लंबे समय से चर्चा और चिंतन का केंद्र रही है। भारत बहुभाषिक, बहुलिपिक देश है। लेकिन इस बहुलता के बावजूद भारतीयता की अंतर्धारा उसे उसकी सबसे बड़ी विशिष्टता है। भारतीयता की इस अंतर्धारा को और अधिक पुष्ट करने में राष्ट्रभाषा हिंदी की तरह ही राष्ट्रलिपि देवनागरी लिपि की बड़ी भूमिका

हो सकती है। तमाम विरोध और संकीर्ण राजनीति को पीछे छोड़ते हुए आज हिंदी देश की स्वाभाविक संपर्क भाषा बन गई है। वह राष्ट्रीय एकीकरण की भी संवाहिका है। इसी प्रकार देवनागरी लिपि को समस्त भारत की संपर्क लिपि बनाने हेतु देशवासियों को संगठित और सक्रिय होना चाहिए। भाषा विशेष की विशिष्ट ध्वनियों को समायोजित करने के लिए देवनागरी लिपि में आंशिक संशोधन/परिवर्द्धन भी किया जा सकता है। देवनागरी लिपि को लचीलापन और उदारता दिखानी चाहिए ताकि अधिकाधिक भारतीय भाषाओं के साथ उसकी सहज निकटता और आत्मीयता स्थापित हो सके।

तमाम भाषाशास्त्री भाषा-शिक्षण के अंतर्गत चार भाषिक कौशलों का उल्लेख करते हैं- सुनना, बोलना, लिखना और पढ़ना। सुनना और बोलना नामक दो भाषिक कौशल भाषा-अधिगम का प्रथम चरण हैं; जबकि लिखना और पढ़ना द्वितीय चरण माने जाते हैं। भाषा-अधिगम के द्वितीय चरण का संबंध लिपि से है। भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि को अपनाकर भाषा-अधिगम की जटिल प्रक्रिया को बहुत सरल और सर्वसाध्य बनाया जा सकता है। ऐसा करके सिर्फ प्रथम चरण के साथ ही नई-नई भाषाओं को सीखा जा सकेगा। द्वितीय चरण के मुश्किल होने के कारण ही किसी भी भाषिक समुदाय में प्रथम चरण में दक्ष अर्थात सुनने-बोलने वाले लोग द्वितीय चरण में दक्ष अर्थात लिखने-पढ़ने वालों की तुलना में बहुत अधिक होते हैं। प्रथम चरण भी काफी आसान हो जाएगा क्योंकि कश्मीर से कन्याकुमारी तक और कच्छ से कामरूप तक भारतीय भाषाओं के सांस्कृतिक संदर्भ और शब्दावली काफी मिलती-जुलती है। इसका मूल कारण यह है कि अनेक भारतीय भाषाओं की व्युत्पत्ति वेदभाषा संस्कृत से हुई है। यह भारतीयों को बहुभाषिक बनाने की भी कुंजी है। शिक्षित भारतीय अनेक भाषाओं को आसानी से पढ़-लिख सकेगा और उनके समृद्ध साहित्य, अंतर्निहित सांस्कृतिक परंपराओं से परिचित हो सकेगा। उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि भारतीय भाषाएँ परस्पर प्रतिस्पर्धी नहीं, बल्कि संपूरक हैं। देवनागरी लिपि को अपनाने से यह पस्परता और संपूरकता क्रमशः बढ़ेगी। भारतीय भाषाओं में शत्रुता नहीं, मैत्री और लेन-देन जरूरी है। अरब जगत की अधिकांश भाषाओं की लिपि अरबी और यूरोप-अमेरिका की अनेक भाषाओं की लिपि रोमन है। इसलिए उनमें न सिर्फ बेहतर सामाजिक-सांस्कृतिक संवाद है, बल्कि व्यापार और पर्यटन भी खूब फल-फूल रहा है। आज बाजार और भाषा का अन्योन्याश्रित संबंध है। भाषा के माध्यम से बाजार का विस्तार होता है और बाजार के द्वारा भाषा का प्रचार-प्रसार होता है। इसीलिए हिंदी का इतना विकास और विस्तार हो रहा है। अन्य भारतीय भाषाएँ देवनागरी लिपि के माध्यम से अपनी बड़ी बहन हिंदी के साथ जुड़कर न सिर्फ सांस्कृतिक रूप से समृद्ध होंगी; बल्कि रोजगार, व्यापार और पर्यटन क्षेत्र में भी अपनी जगह बना सकेंगी। बड़े बाजार की भाषा होने से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भाषा की पहचान और पूछ बढ़ती है। वह अंतरराष्ट्रीय कूटनीति को प्रभावित करते हुए विदेश-नीति निर्धारण में निर्णायक हस्तक्षेप कर सकती है। अंग्रेजी के भाषिक आतंकवाद से निपटने के लिए भारतीय भाषाएँ साझा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, समान शब्दभंडार और देवनागरी लिपि के आधार पर एक संयुक्त मोर्चे का निर्माण कर सकती हैं। डोगरी भाषा की मूल लिपि टाकरी और कश्मीरी भाषा की शारदा थी। लेकिन समयांतराल में डोगरी ने देवनागरी और कश्मीरी ने नस्तालिक को अपना लिया। आज डोगरी हिंदी समाज द्वारा भी पढ़ी-समझी जाती है। लेकिन कश्मीरी भाषा क्रमशः सिमट-सिकुड़ रही है। वह भी देवनागरी को अपनाकर अपना हिंदी और भारतीय भाषाओं से जुड़ सकती है। अपना विकास और विस्तार कर सकती है। यूँ भी देवनागरी लिपि उसकी मूल लिपि शारदा से ही विकसित हुई है। अतः स्वाभाविक रूप से उसकी लिपि देवनागरी लिपि ही होनी चाहिए।

यह किसी भी भारतीय भाषा या उसकी लिपि को खत्म करने या उसकी जगह को हड़पने की योजना नहीं; बल्कि भारतीय भाषाओं की आपसी समझदारी, साझेदारी और बहनापे को बढ़ाने की परियोजना है। इस परियोजना से किसी भी भारतीय भाषा को कोई खतरा नहीं होगा। अगर किसी को खतरा होगा तो औपनिवेशिक वर्चस्ववाद को ही होगा। रोमन लिपि के भारतीय भाषाओं की लिपि बन बैठने से पहले ही हमें इस खतरे से निपटने की दिशा में सक्रिय पहल करनी चाहिए।

राजनीति जोड़-तोड़ का काम है। इसलिए वह जोड़ती भी है और तोड़ती भी है। लेकिन संस्कृति अगर वह वास्तव में संस्कृति है तो जोड़ती ही जोड़ती है। इसलिए इस परियोजना को फलीभूत करने का उत्तरदायित्व राजनेताओं से ज्यादा संस्कृतिकर्मियों का है। उन्हें आगे आकर और एकमत होकर राष्ट्रीय एकीकरण और भाषा संरक्षण की इस परियोजना में योगदान देना चाहिए। ऐसा करके ही हम भगत सिंह आदि क्रांतिकारियों और स्वतंत्रता सेनानियों के सपनों का भारत बना सकते हैं।

संदर्भ-

1. भारतेंदु हरिश्चंद ग्रंथावली- ओमप्रकाश सिंह (संपादक), प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली। संस्करण, 2010, पृष्ठ-112
2. सिंहावलोकन- यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज। संस्करण, 1951, पृष्ठ-61.
3. भगतसिंह : लेख-2 - - चमनलाल (संपादक), सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, दिल्ली। संस्करण-2005, पृष्ठ-3.
4. वही, पृष्ठ-4.
5. हिंदी साहित्य का इतिहास (भूमिका) - रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी। संस्करण-2008, पृष्ठ-।.
6. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास- रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज। संस्करण-1986, पृष्ठ-145.
7. भगतसिंह : लेख-2 - चमनलाल (संपादक), उपरोक्त, पृष्ठ-8.
8. वही
9. वही, पृष्ठ-9
10. वही , पृष्ठ-10
11. वही, पृष्ठ-11
12. मधुमती पत्रिका (अंक-9, सितम्बर 2022), पृष्ठ-7; सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, दिल्ली। संस्करण-2005, पृष्ठ-7
13. वही , पृष्ठ-8;
14. द एसेंशियल राइटिंग्स ऑफ नेताजी सुभाष चंद्र बोस - शिशिर के. बोस एवं सुगता बोस (सं), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, यूके, वर्ष 1999, पृ. 206

भगत सिंह की साहित्यिक निधि : एक विश्लेषण

हरीश जैन

सरदार भगत सिंह क्रांतिकारी होने के साथ-साथ एक विचारक भी रहे हैं। अक्षर जगत में उनके महत्त्वपूर्ण योगदान की एक रूपरेखा

भगत सिंह के जीवन का चित्रण करने वाली जीवनियों का प्रकाशन बहुत पहले सन् 1930 में ही शुरू हो चुका था, जब ट्रिब्यूनल में उन पर मुकदमा चल रहा था। हालाँकि, इस पर बिना किसी शोरगुल के प्रतिबंध लगा दिया गया था। ये आरंभिक जीवनियाँ मुख्यत: समाचारपत्रों आदि में प्रकाशित सामग्री से चुन-बीन कर तैयार की गई थीं और इनमें कोई विस्तृत विवरण नहीं था। इस दिशा में पहला गंभीर प्रयास पटना में जयचंद्र विद्यालंकार के संरक्षण में हुआ, जहाँ उनकी पत्रिका महावीर सर्चलाइट का कार्यालय था। हालाँकि शहीद सरदार भगत सिंह शीर्षक इस आलेख के लेखक के रूप में जगदीश नारायण की पत्नी चंद्रावती का उल्लेख है, पर यह आज भी एक रहस्य बना हुआ है। किंतु, इस आलेख के केवल प्रथम चार अध्याय (अनुमानित 150 पृष्ठों में से लगभग 40 पृष्ठ) ही प्रकाशित हो पाए, क्योंकि औपनिवेशिक सरकार ने प्रेस से ही इसकी प्रकाशित और अप्रकाशित पांडुलिपि जब्त कर ली थी।[1] वास्तव में, पहली संपूर्ण जीवनी के प्रकाशन का श्रेय लाहौर षड्यंत्र कांड में उनके एक सहयोगी जितेंद्र नाथ सान्याल को जाता है, जिन्हें दोषमुक्त कर बरी कर दिया गया। शहीद के परिवार और उनके दोस्तों से उनका गहरा संपर्क था और वह उनके कार्य, विचारों और व्यक्तित्व के साथ-साथ क्रांतिकारी दल से भी बहुत हद तक परिचित थे। सान्याल का यह कार्य सरकार के क्रोध का शिकार हो गया, किंतु समय के उतार-चढ़ाव से किसी तरह बचता रहा और आज भी उपलब्ध है, जिसे व्यापक स्तर पर लोग पढ़ते और सराहना करते हैं।[2] इसका प्रकाशन सन् 1931 के पूर्वार्ध में हुआ और भगत सिंह की भतीजी, उनके छोटे भाई कुलतार सिंह की बेटी वीरेंद्र सिंधु लिखित 'युगद्रष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे' शीर्षक पुस्तक के वर्ष 1968 में प्रकाशित होने से पहले लगभग चार दशकों तक उनके जीवन पर लेखन का कोई गंभीर प्रयास नहीं हो पाया था। यह अपने आपमें एक अभिनव कार्य था। इसमें समस्त परिवार का विस्तृत विवरण अति सूक्ष्म ढंग से साहित्यिक सुरभि में प्रस्तुत किया गया है। यह परिवार के कई विवरणों के लिए एकमात्र उपलब्ध पुस्तक है। वीरेंद्र वे सभी कागजात, समाचार पत्र व संचित सामग्री विभाजन के समय अपने साथ ले आईं, जिन्हें उनके परिवार ने संजोए रखा था। इसके अतिरिक्त, शहीद-ए-आजम के सभी जीवित सहयोगियों और साथियों से वीरेंद्र का संपर्क था और उनसे उनका पत्र-व्यवहार होता रहता था।[3] ऐसे में उन्हें उनके जीवन और कार्यों का एक सुविस्तृत चित्रपट तैयार करने का अवसर मिला, और उन्होंने इसे तैयार किया। अपने इस कार्य को अधिक से अधिक समृद्ध करने के लिए उन्होंने पत्रों, न्यायालय के दस्तावेजों और अन्य प्रकाशित सामग्री का उपयोग भी किया। शहीदे आजम और उनके साथियों के लेखन का यह प्राय: पहला उपयोग था। सन् 1974 में उन्होंने भगत सिंह की हिंदी में 'पत्र और दस्तावेज'[4] शीर्षक एक पतली पुस्तिका से भी सहायता ली, जिसका संग्रह उन्होंने अपने लेखन के लिए पूर्व में किया था। वर्ष 1977 में 'मेरे क्रांतिकारी साथी'[5] के रूप में उनका अंतिम योगदान था, जिसमें उन्होंने कई आंदोलनों के शहीदों के जीवनी लेखों का संकलन किया था। इस संग्रह के प्रति उनका मानना था कि ये आलेख शहीद ने लिखे थे। इन जीवनी लेखों का प्रकाशन पहले नवंबर, 1928 में 'चाँद' पत्रिका के 'फाँसी' शीर्षक विशेषांक में हुआ था।[6] ये लेख मार्गदर्शी थे और इनकी

सहायता से उन्होंने नितांत भिन्न नजरिए से शहीद को न केवल उनके कार्यों के आधार पर बल्कि उनके लेखन के माध्यम से भी देखने के लिए एक नया झरोखा खोल दिया। और यहीं से शहीद व उनके साथी देशवासियों के लेखन के संकलन का कार्य आरंभ होता है।

ऊपर चंद्रावती की आंशिक रूप से प्रकाशित जिस पुस्तक का उल्लेख किया गया है, उसमें एक महत्वपूर्ण अंश जयचंद्र विद्यालंकार के परिचय के ठीक बाद प्रस्तुत कुछ पुस्तकों की सूची[7] है :

1. अमृतसर वासी एक महिला साथी के तीन लंबे पत्र।
2. लाहौर कांग्रेस के अवसर पर एक स्वयंसेवक से बातचीत।
3. पंजाब केसरी की संपूर्ण फाइल।
4. सरदार किशन सिंह से पत्राचार
5. सरदार भगत सिंह से संबद्ध दो अप्रकाशित पुस्तकें
6. समाचार पत्र, देश, मिलाप, द पीपल और विश्वमित्र की कतरनें।
7. इलाहाबाद स्थित अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के कार्यालय से प्रकाशित बुलेटिन का एक पुराना अंक।

यह एक विस्तृत सूची है, समय का एक प्रामाणिक संग्रह। किंतु, इसका क्या हुआ यह ज्ञात नहीं है। यह संग्रह कभी प्रकाशित हुआ या नहीं, या फिर आगे चलकर यह किसी लेखक अथवा संकलनकर्ता को प्राप्त हुआ या नहीं, इसकी कोई जानकारी नहीं है। किंतु, यह इस बात का संकेत देता है कि ऐसे अभिलेखागार हो सकते हैं, जिनकी खोज की जा सकती है। हम इस संभावना से भी कतई इनकार नहीं कर सकते कि वीरेंद्र को यह संग्रह अंशत: अथवा पूर्णत: उपलब्ध रहा होगा क्योंकि इस प्रकरण के सभी पात्र निश्चय ही उनके संपर्क में थे। इस संग्रह के आंशिक या पूर्ण रूप से उपलब्ध होने की संभावना से भी इनकार नहीं कर सकते हैं क्योंकि इस कड़ी के सभी कलाकार उनके संपर्क में रहे होंगे। इस प्रकार, भगत सिंह और उनके लेखन से जुड़ी सामग्री के संग्रह का कार्य प्राय: उनके जीवनकाल में ही शुरू हो गया था। विधानसभा बम कांड में गिरफ्तारी के बाद रोज के घटनाक्रमों के साथ शहीद के परिवार को मिले दस्तावेजों का उल्लेख चंद्रावती के संग्रह में नहीं था। यहाँ सन् 1940 के दशक के आरंभ में उनके एक सहयोगी शहीद राम दुलारे त्रिवेदी पर हुए लेखन के कई प्रयासों का उल्लेख मैंने नहीं किया है। किंतु, इस क्रम में किसी ने कोई भी महत्वपूर्ण तथ्य नहीं जोड़ा था।

इस क्रम में आगे हमारी मुलाकात परिवार के एक और सदस्य से होती है, जिनकी शहीद और उनके साथियों के जीवन के अनुसंधान में अधिक न सही किंतु समान रुचि थी। शहीद की छोटी बहन अमर कौर के बेटे जगमोहन सिंह ने लुधियाना के गुरु नानक इंजीनियरिंग कॉलेज से इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त की थी। लुधियाना में रहते हुए उन्हें शहीद की माँ और अपनी नानी विद्यावती के साथ लगातार रहने का सौभाग्य मिला था। जगमोहन के पास शहीद की विरासत के साथ-साथ उनकी उतनी ही महान माता भी थीं। उन्हें इस बात का आभास कम उम्र में ही हो चला था कि शहीद के जीवन, समय और कार्यों का अध्ययन अकेले संभव नहीं, और आवश्यक है कि वह अपने देशवासियों के साथ मिलकर काम करें। क्रांतिकारी आंदोलन में उन्होंने गहरी रुचि ली और शहीदों व उनके जीवित साथियों से जुड़ी सामग्री का सक्रियता से संग्रह करना शुरू किया। उन्हें अपने सहारनपुर स्थित घर में उपलब्ध सभी दस्तावेजों और कागजात तथा अपनी ममेरी बहन वीरेंद्र, जिनके वह बहुत करीब थे, के कार्य की पूरी जानकारी थी। उन दिनों फोटो कॉपियर नहीं होता था। इसलिए वह यथासंभव लिखकर सामग्री की प्रतिलिपियाँ तैयार करते।[8] शहीद की जेल नोटबुक ऐसा ही एक दस्तावेज थी, जिसकी उन्होंने पूरी की पूरी नकल की। किंतु अपनी सामग्री के संकलन, संपादन या प्रकाशन का कोई प्रयास उन्होंने प्राय: नहीं किया। इसका अर्थ यह नहीं कि वह सक्रिय नहीं थे। अपने पूर्व शिक्षक मालविंदर जीत सिंह वराइच के साथ उन्होंने पंजाबी में एक लघु पत्रिका का प्रकाशन और विभिन्न आंदोलनों के शहीदों के चित्रों की प्रदर्शनी का आयोजन किया। शहीदों के कुछ पत्रों का अनुवाद कर उन्होंने उन्हें अपनी पत्रिका में प्रकाशित किया। सन् 1968 में, उन्होंने शिव वर्मा लिखित 'संस्मृतियाँ' के पंजाबी अनुवाद का प्रकाशन किया। 23 मार्च 1976 को अमरजीत चंदन और जगमोहन ने शहीद के पत्रों और कुछ आलेखों के पहले पंजाबी संकलन का प्रकाशन किया, हालाँकि इस संकलन में ज्यादातर सामग्री उनकी पत्रिका से ली गई थी।[9] संकलन के अहस्ताक्षरित परिचय में एक शोकपूर्ण उक्ति पर ध्यान देना आवश्यक है, जिसमें कहा गया है, "इन दस्तावेजों का संपादन और प्रकाशन एक व्यक्तिगत प्रयास है, जो जनता के नाम पर फलते-फूलते क्रांतिकारी दलों और संगठनों को आईना दिखाता है।[10] "इस लघु संकलन ने बहुतों का ध्यान आकर्षित किया और शहीद के दस्तावेजों के अनुवाद और प्रकाशन के लिए मोगा में सुखदर्शन नट के अधीन दस दोस्तों के एक सहकारी संगठन का गठन किया गया और इसके साथ ही रेडिकल प्रकाशन अस्तित्व में आया। इस लघु संकलन को विस्तार देने के लिए जगमोहन के साथ उन्होंने सामूहिक रूप से अखबारों व पत्रिकाओं और सरदार भगत सिंह के सहयोगियों जैसे स्रोतों की सहायता ली। राष्ट्रीय अभिलेखागार और नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय (एनएमएमएल) की खोज में डॉ. बिपिन चंद्रा ने सहायता की। यह सामूहिक प्रयास

शहीद की छोटी बहन अमर कौर के बेटे जगमोहन सिंह ने लुधियाना के गुरु नानक इंजीनियरिंग कॉलेज से इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त की थी। लुधियाना में रहते हुए उन्हें शहीद की माँ और अपनी नानी विद्यावती के साथ लगातार रहने का सौभाग्य मिला था। जगमोहन के पास शहीद की विरासत के साथ-साथ उनकी उतनी ही महान माता भी थीं। उन्हें इस बात का आभास कम उम्र में ही हो चला था कि शहीद के जीवन, समय और कार्यों का अध्ययन अकेले संभव नहीं, और आवश्यक है कि वह अपने देशवासियों के साथ मिलकर काम करें

1984 तक पूरा हुआ और मई 1985 में इसे प्रकाशित किया गया।[11] यह संकलन पूर्ववर्ती संकलनों से कहीं अधिक समृद्ध था। 'ह्वाइ आई एम ऐन एथीस्ट' की खोज अब तक की जा चुकी थी। 'कीर्ति' की फाइलें, चाँद का 'फाँसी' अंक, द पीपल आदि ने इसे और पुष्ट किया। हालाँकि इसमें कुछ अंश अपुष्ट हैं। शहीदों के लेखन का इस स्तर का यह किसी भी भाषा में पहला संकलन था। अपने संपादकत्व में जगमोहन ने शीघ्र ही इसके पुनर्मुद्रण का प्रकाशन किया। यह सर्वाधिक सफल सिद्ध हुआ और भगत सिंह की साहित्यिक निधि का आधार बन गया। किंतु शहीद की जेल नोटबुक के प्रति दोनों ममेरे-फुफेरे भाई रहस्यमय ढंग से मौन रहे। अंततः शहीद के छोटे भाई कुलबीर सिंह के पुत्र अभय संधू ने नोटबुक के पहले पृष्ठ पर अपने हस्ताक्षर के साथ जेरॉक्स प्रतियाँ बनाकर उन्हें एनएमएमएल, राष्ट्रीय अभिलेखागार और तुगलकाबाद स्थित गुरुकुल इंद्रप्रस्थ को सौंप दिया। इनमें गुरुकुल की प्रति तो प्रसारित की गई, किंतु शेष अतीत के गर्भ में रह गई।[12]

इन तीन चचेरे-ममेरे-फुफेरे भाइयों वीरेंद्र, जगमोहन और अभय संधू को भवन निर्माता माना जा सकता है, जिन्होंने भगत सिंह और उनके देशवासियों के लेखन सामग्री के प्रकाशन की नींव रखी। उनके प्रयासों में शहीद सुखदेव के छोटे भाई मथुरा दास ने पर्याप्त सहायता की, जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने सबसे ज्यादा यातना दी थी। उन्होंने अपने परिवार के सभी दस्तावेज एकत्र किए, जिनमें सुखदेव के परिवार को लिखे पत्रों के साथ-साथ अन्य अभिलेखीय सामग्री शामिल थी, जिन्हें सहेज कर ठीक किया जा सकता था। किंतु विभाजन के कारण बहुत-सी सामग्री नष्ट हो गई। इस क्षति को पूरा करने के लिए उन्होंने अपने शहीद भाई से संबद्ध दस्तावेजों का पता लगाने में अपना जीवन अर्पित कर दिया।[13] पार्टी के एक वरिष्ठ सदस्य शिव वर्मा अपनी विरासत को बचाए रखने का प्रयास निरंतर पूरी सक्रियता से करते रहे और अपने सहयोगियों के विषय में लिखने व अंग्रेजी भाषा में अपने दस्तावेजों के पहले संस्करण के संपादन में उन्होंने योगदान दिया।[14] ऐसे अनेकानेक लोग हैं जिन्होंने इस कार्य में यथासंभव सहयोग किया। इनमें नौजवान भारत सभा[15] के एक सदस्य गणपति मुख्य हैं। उन्होंने लाला रामशरण दास और विपिन चंद्रा[16] के 'इंट्रोडक्शन टु द ड्रीमलैंड' में सहयोग किया, जिन्होंने सितंबर, 1931 के दि पीपल में प्रकाशित 'ह्वाइ आई एम ऐन एथीस्ट' की एक प्रति और कुछ अभिलेखीय सामग्री का पता लगाया था। किंतु, इसमें कोई संदेह नहीं कि इनके अतिरिक्त ऐसे कई अज्ञात और अनभिज्ञात लोग थे, जिन्होंने इन परिवारों के जीवन और समय को सँवारने के प्रयास में उनके प्रतिष्ठित सदस्यों से संबंध कायम करने में सहायता की।

वस्तुतः, वीरेंद्र के पत्र एंड दस्तवेज के प्रकाशित होने से शांत नदी में हलचल पैदा हो गई और प्रतिक्रियाओं का एक सिलसिला-सा चल पड़ा। सन् 1974 में इसके प्रकाशन के तीन वर्ष बाद 1 अप्रैल, 1977 को मथुरा दास थापर ने वीरेंद्र को पत्र लिखकर अनुरोध किया कि वह सुखदेव को लिखे भगत सिंह के दो पत्रों की मूल प्रतियाँ या उनकी प्रतिकृतियाँ उपलब्ध कराएँ और यदि ऐसा न हो, तो उन्हें उस स्रोत की जानकारी दें, जहाँ से उन्हें वे पत्र मिले। उन्होंने उनसे कहा कि वह अपने भाई के जीवन से जुड़ी प्रत्येक सामग्री की तलाश में हैं - विशेष रूप से वे पत्र जो उन्होंने लिखे हों या जो उन्हें भेजे गए हों। उन्हें इस बात की प्रसन्नता थी कि सामग्री के रूप में अब उनके पास कम से कम पत्र तो थे। 18 जून को वीरेंद्र ने उत्तर दिया कि उनके पास कोई मूल प्रति नहीं थी और उन्होंने सामग्री उन समाचार पत्रों से ली थी, जिनमें इन पत्रों का प्रकाशन हुआ था, किंतु उन्हें यह स्मरण नहीं था कि वे कौन-से समाचार पत्र थे।[17] उन्होंने उनसे कहा कि ये सभी समाचार पत्र सहारनपुर में उनके पिता कुलतार सिंह के पास सुरक्षित रखे हुए हैं। मथुरा दास ने कुलतार सिंह को पत्र लिखा, जिसके उत्तर में उन्होंने 15 सितंबर, 1977 को लिखा कि पहला पत्र न्यायालय की कार्यवाही का हिस्सा था और दूसरा पंजाब में मिलाप, प्रताप आदि समाचार पत्रों में कई बार प्रकाशित हो चुका है। कुलतार सिंह ने उनसे कहा कि क्रांति कुमार उनसे कहते थे कि उनके पास मूल प्रति है, किंतु दुख की बात है कि अब वह इस दुनिया में रहे। उन्होंने उन्हें आश्वासन दिया कि वह उर्दू के अखबारों का पता लगाएंगे और जो कुछ भी उन्हें मिलेगा वह भेज देंगे।[18] जानकारी और दस्तावेजों की खोज के क्रम में मथुरा दास ने हंस राज वोहरा, राज्य और केंद्र सरकारों और अपने भाई के पाकिस्तान में रह रहे कई ज्ञात सहयोगियों के साथ पत्र-व्यवहार किया।[19] ये सारे प्रयास प्रेरक और समर्पित थे।

वीरेंद्र और जगमोहन के कार्य से कई अन्य उत्साही लोगों को प्रेरणा मिली। किंतु, अब तक जो कुछ भी प्राप्त हुआ था, उसे और पुष्ट करने के लिए उनके पास कुछ नहीं था। इन संकलनों में सभी क्षेत्र में कुछ त्रुटियाँ और कमियाँ थीं जिनमें सुधार करने की आवश्यकता थी। किंतु वे ऐसा कुछ नहीं कर सके। हिंदी, अंग्रेजी, या अन्य भाषाओं में पूर्ण या चुनिंदा दस्तावेज उपलब्ध कराने वाले सभी परवर्ती और मौजूदा संकलन किंचित वृद्धि या काट-छाँट, अथवा दस्तावेजों के संकलन की नई व्यवस्था के साथ पूरी तरह से ऊपर वर्णित सामग्री पर आधारित हैं। बाद में हिंदी और अंग्रेजी, पंजाबी, या अन्य भाषाओं में प्रकाशित सभी संकलनों में पहले

वीरेंद्र और जगमोहन के कार्य से कई अन्य उत्साही लोगों को प्रेरणा मिली। किंतु, अब तक जो कुछ भी प्राप्त हुआ था, उसे और पुष्ट करने के लिए उनके पास कुछ नहीं था। इन संकलनों में सभी क्षेत्र में कुछ त्रुटियाँ और कमियाँ थीं जिनमें सुधार करने की आवश्यकता थी। किंतु वे ऐसा कुछ नहीं कर सके। हिंदी, अंग्रेजी, या अन्य भाषाओं में पूर्ण या चुनिंदा दस्तावेज उपलब्ध कराने वाले सभी परवर्ती और मौजूदा संकलन किंचित वृद्धि या काट-छाँट, अथवा दस्तावेजों के संकलन की नई व्यवस्था के साथ पूरी तरह से ऊपर वर्णित सामग्री पर आधारित हैं

जैसी त्रुटियाँ और सीमाएँ थीं और उन्हें पूरी तरह से मिश्रण बना दिया गया। विभिन्न विषयों से युक्त संक्षिप्त भूमिकाएँ बड़ी-बड़ी गलतियों, मिथ्या वर्णनों, अशुद्धियों, तथ्यों की त्रुटिपूर्ण प्रस्तुति, दोषपूर्ण कालक्रम, संदर्भ, खींच-खींच कर किए गए लेखन, और उनके मूल से भरी पड़ी हैं।[20]

पत्र और दस्तवेज में वीरेंद्र ने 34 आलेखों का संकलन किया है, जिनमें से 18 परिवार, दोस्तों और प्रकाशनों को लिखे गए पत्र, सत्र और उच्च न्यायालय में दिये गए 2 बयान, न्यायालयों और सरकार को लिखे 5 पत्र, 2 पत्रक और 7 अन्य आलेख हैं। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मेरे क्रांतिकारी साथी - सरदार भगत सिंह में, चाँद से लिए गए 47 आलेख हैं और सभी विभिन्न क्रांतिकारी आंदोलनों से संबद्ध शहीदों के जीवनी-चित्र और एक आलेख हैं। जैसा कि पुस्तक के शीर्षक में संकेत दिया गया है, उन्होंने भगत सिंह को आलेखों का लेखक बताया है। यदि हम आंदोलनों के अनुरूप चित्रों और आलेखों को अलग करें, तो इनका क्रम इस प्रकार हो सकता है :

1. गदर आंदोलन 20
2. बब्बर अकाली आंदोलन 9
3. बंगाल आधारित आंदोलन 6
4. काकोरी कांड 4
5. हार्डिंग बम कांड दिल्ली 4
6. महाराष्ट्र 1
7. इंडिया हाउस लंदन 1
8. किसान आंदोलन पंजाब 1
9. कूका आंदोलन 1

यहाँ हम आलेखों, पत्रों आदि के लेखकों, कालक्रम, किसी भी प्रकार की अनुकूलता, या किसी अन्य सीमाबंधन के किसी भी समावेशन के गुणों या अवगुणों पर चर्चा नहीं कर रहे हैं। किंतु जो साफ तौर पर स्पष्ट है वह है वैसे शहीदों की भारी उपस्थिति जिनका संबंध किसी न किसी रूप में पंजाब से है। वे या तो पंजाब में पैदा हुए और पले-बढ़े अथवा उनकी क्रांतिकारी कार्रवाई का संबंध पंजाब से था या फिर उन पर मुकदमा लाहौर में चलाया गया।

दूसरी तरफ, जगमोहन का पंजाबी में संकलन 'शहीद भगत सिंह अते ओहना दे साथियाँ दियाँ लिखतन' उनका अंतिम संकलन है, जिसे उन्होंने भगत सिंह और उनके साथियों के संगृहीत आलेखों-पत्रों के प्रकाशन के लिए वर्ष 1974 में अमरजीत चंदन और आगे चलकर दर्शन नट जैसे अपने सहयोगियों तथा अन्य लोगों के साथ मिलकर तैयार किया। इस प्रकार उन्होंने शहीदों के 105 आलेखों के एक व्यापक संकलन का प्रकाशन किया। इसका पहली बार प्रकाशन वर्ष 1985 में मोगा स्थित रेडिकल पब्लिकेशन ने किया। इसके अनंतर वर्ष 2000 में इसका एक संशोधित संस्करण प्रकाशित हुआ और 2000 का यही संस्करण गत दो दशकों से बाजार में उपलब्ध है। यह संकलन तैयार करते समय उन्होंने अपनी ममेरी बहन से कई कदम आगे बढ़कर इसके आकार-प्रकार में पर्याप्त विस्तार किया। वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भगत सिंह को उनके साथियों और सहयोगियों के बराबर माना। वह भगत सिंह और उनके साथियों के लेखन को एक सामूहिक कार्य, सामूहिक विचार मंथन की उपज मानते थे - एक दूसरे की सहायता करते, एक दूसरे को अपने-अपने विचार और अर्थ समझाते। भगत सिंह मेहराब के बीच का पत्थर हो सकते हैं, किंतु उसे बनाकर खड़ा करने के लिए अन्य सभी पत्थरों की आवश्यकता होती है; एक भी पत्थर खिसक जाए, तो मेहराब गिर जाएगी।[21] इसी के मद्देनजर, भगत सिंह और उनके साथियों से संबद्ध जो दस्तावेज उन्हें मिल सके, उन सबको उन्होंने समान स्थान दिया। एचआरए और एचएसआरए के सदस्यों का समावेश भी उन्होंने समान स्तर पर किया। किंतु, अधिक से अधिक संचय और संकलन करने के उत्साह में पुस्तक में बाहरी सामग्री को जोड़ने के उनके कार्य की बहुधा आलोचना की जाती है। इसकी सामग्री के कई बिंदुओं को प्रामाणिक मानना कठिन हो सकता है। किंतु, उनके अपने तर्क हैं और संकलन में शामिल कई विषयों को लेकर अपनी भूमिका में वह यह दावा नहीं करते कि इनका लेखन शहीद ने किया है।[22] मुख्य समस्या पंजाब के अमृतसर से प्रकाशित पत्रिका 'कीर्ति' से ली गई सामग्री को लेकर है। 'कीर्ति' के अतिरिक्त 'प्रताप', 'मतवाला', 'महारथी', 'चाँद' और 'हिंदी संदेश' में प्रकाशित आलेखों से उनके कारावास के पूर्व के जीवन से संबद्ध आलेखों से ली गई सामग्री का समावेश भी किया गया है। समग्र रूप से, उनके 105 आलेखों के इस संकलन का मोटे तौर पर निम्नलिखित दस खंडों में वर्गीकरण किया जा सकता है :

1. कीर्ति से चयनित 44
2. ऊपर वर्णित पाँच पुस्तकों से चयनित 8
3. पोस्टर या पैंफलेट 3
4. परिवार, मित्रों और प्रकाशनों को प्रेषित पत्र 19
5. सत्र और उच्च न्यायालय में दिए गए बयान 2
6. संदेश और तार 4
7. न्यायालयों और सरकार को प्रेषित पत्र 11
8. घोषणापत्र 2
9. जेल से प्रकाशन हेतु बाहर भेजे गए आलेख 6
10. सुखदेव और महावीर के पत्र 6

जगमोहन ने पत्र और दस्तावेज में वीरेंद्र द्वारा संकलित सभी 34 आलेखों को संग्रह में शामिल किया, किंतु मेरे क्रांतिकारी साथी से उन्होंने केवल तीन आलेख लिए। इस प्रकार, यदि जगमोहन के संग्रह में मेरे क्रांतिकारी साथी के शेष 44 आलेखों को जोड़ दें, तो भगत सिंह और उनके साथियों के आलेखों की कुल संख्या बढ़कर 149 हो जाएगी।

जगमोहन का पंजाबी में संकलन 'शहीद भगत सिंह अते ओहना दे साथियाँ दियाँ लिखतन' उनका अंतिम संकलन है, जिसे उन्होंने भगत सिंह और उनके साथियों के संगृहीत आलेखों-पत्रों के प्रकाशन के लिए वर्ष 1974 में अमरजीत चंदन और आगे चलकर दर्शन नट जैसे अपने सहयोगियों तथा अन्य लोगों के साथ मिलकर तैयार किया। इस प्रकार उन्होंने शहीदों के 105 आलेखों के एक व्यापक संकलन का प्रकाशन किया। इसका पहली बार प्रकाशन वर्ष 1985 में मोगा स्थित रेडिकल पब्लिकेशन ने किया

कारावास के पहले के उनके 52 लेखनों का वर्गीकरण नीचे प्रस्तुत रूप में भी किया जा सकता है। इस वर्गीकरण में मेरे क्रांतिकारी साथी में निहित 47 आलेखों को एक दूसरे से प्रभावित होना चाहिए।

1. अंतरराष्ट्रीय आंदोलन (इंटरनेशनल मूवमेंट) 3
2. काकोरी कांड (काकोरी केस) 6
3. कूका आंदोलन (कूका मूवमेंट) 2
4. लॉर्ड हार्डिंग बम कांड (लॉर्ड हार्डिंग केस) 2
5. देवघर षड्यंत्र कांड (देवघर कांस्पिरेसी केस) 2
6. किसान आंदोलन पंजाब (किसान मूवमेंट पंजाब) 1
7. गदर आंदोलन (गदर मूवमेंट) 3
8. लाला लाजपत राय 3
9. धर्म और सांप्रदायिकता (रेलिजन एंड कम्यूनलिज्म) 2
10. पहला स्वतंत्रता संग्राम (फर्स्ट वार ऑव इंडिपेंडेंस) 1
11. समकालीन मुद्दे (कंटेंपरेरी इशूज) 10
12. अन्य ज्ञात स्रोतों से प्राप्त (फ्रॉम अदर नोन सोर्सेज) 2
13. हित के मुद्दों से संबद्ध (ऑन इशूज ऑव इंटरेस्ट) 11
14. बब्बर अकाली आंदोलन (बब्बर अकाली मूवमेंट) 1
15. इंडिया हाउस लंदन 1
16. भाषा और लिपि से संबद्ध (ऑन लैंग्वेज एंड स्क्रिप्ट) 1
17. मार्शल लॉ 1

इन दोनों तालिकाओं की तुलना करने और समान आंदालनों के आँकड़ों को जोड़ने पर हमें निम्नलिखित विवरण मिलता है :

1. गदर आंदोलन 21
2. बब्बर अकाली आंदोलन 10
3. बंगाल आधारित आंदोलन 8
4. काकोरी कांड 10
5. लॉर्ड हार्डिंग बम कांड दिल्ली 6
6. महाराष्ट्र 1
7. इंडिया हाउस लंदन 2
8. किसान आंदोलन पंजाब 1
9. कूका आंदोलन 3
10. प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1
11. मार्शल लॉ 1

इस गणना के अनुसार आंदोलनों व शहीदों से संबद्ध कुल 64 जीवनी-चित्र (दोनों संकलनों में 3 आलेख समान थे) और आलेख होते हैं और इस प्रकार दोनों ममेरे-फुफेरे भाई-बहन ने उनके कुल 43 प्रतिशत लेखनों का संकलन किया। इन आलेखों-पत्रों में भारत की स्वतंत्रता के प्रति उनके समर्पण की झलक दिखाई देती है और ये सभी उनकी पारिवारिक विरासत का हिस्सा थे। उनके लेखन की शैली उस समय के लेखन की विशेष शैली जैसी ही थी - तथ्यपरक, उपयोगी, सटीक किंतु आलंकारिक, तीखी, आक्रामक, चुटीली, किसी उच्च-उदात्त उद्देश्य के लिए आह्वान करती, कुछ करने को प्रेरित करती, और एक प्रकार से इतनी वास्तविक कि अंतड़ियों में सहज प्रतिक्रिया उत्पन्न कर दे, शोषण व मनुष्य की गरिमा को आहत करने वाली कुटिल योजनाओं और अनैतिकता के विरुद्ध अंतर्मन को आंदोलित कर दे। उद्देश्य सूचना देना या मनोरंजन करना नहीं बल्कि पाठकों को मिट्टी के लाल और महान सभ्यता के उत्तराधिकारी, उनके महान पूर्वजों द्वारा छोड़ी गई छड़ी के धारक के रूप में उनके जीवन से जुड़ी जानकारी से अवगत कराना था। एक राष्ट्र बनने और बढ़ने के लिए, एक राष्ट्र को अपने नायकों को स्मरण करने के साथ-साथ उनकी सराहना करनी चाहिए और ऐसा बार-बार व रोज करना चाहिए। ये आलेख महान उद्देश्य, भारत माता के लिए उनके बलिदान में एक योगदान थे। उन्होंने लेखन के लिए या किसी आंतरिक लालसा को पूरा करने अथवा किसी रिक्ति को भरने के लिए लेखन नहीं किया। शहीदों पर लिख कर वह न केवल अन्य लोगों को साथ चलने के लिए प्रेरित कर रहे थे, बल्कि इस प्रक्रिया में आगे बढ़ने और कार्य करने के लिए स्वयं से भी अपील कर रहे थे। वह अपने हृदय को एक अनवरत गति में मजबूत और प्रेरित कर रहे थे। संभव है कि आज विभिन्न संकलनों में संगृहीत ये 64 आलेख दो या दो से अधिक लेखकों द्वारा संयुक्त रूप से या अलग-अलग लिखे गए हों, और अब लेखकों को उनसे जोड़ने और अलग करने का प्रयास उनके लेखन के उद्देश्य के साथ उचित नहीं है। इनमें से ज्यादातर आलेख पार्टी के कार्य के लिए लिखे गए। ज्यादातर सामग्री अन्य प्रकाशित स्रोतों से ली गई। किंतु यह उन्हें कमतर लेखन नहीं बनाता। कुछ विद्वान लेखन का श्रेय किसी एक व्यक्ति को देते हैं, तो कुछ अन्य किसी दूसरे को। ऐसे में हम किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते। हम भगत सिंह और शिव वर्मा के बीच अंतर कैसे करें, और इससे हमें हासिल क्या होगा? जल्द ही इन आलेखों के लेखन की एक शताब्दी पूरी हो जाएगी और यह खुशी की बात है, क्योंकि हमें अपने शहीदों और नायकों को हमेशा स्मरण रखना चाहिए। किंतु अपने स्वरूप में राष्ट्रवादी होने के कारण इन आलेखों का कोई राजनीतिक महत्व नहीं है।

अब यदि शेष 85 लेखनों का अवलोकन करें, तो हमें हमारी ऊपर दी गई वर्गीकरण तालिका में 1918 से 1931 तक परिवार, मित्रों और प्रकाशनों को लिखे गए 19 पत्र मिलते हैं और इनमें उनके द्वारा उनके दादा, मौसी, पिता, छोटे भाइयों, बी.के. दत्त और उनकी बहन तथा सुखदेव को लिखे गए पत्र शामिल हैं। एक पत्र मॉडर्न रिव्यू के संपादक के नाम है। परिवार के नाम लिखे पत्र, और विशेष रूप से अपने छोटे भाइयों को लिखे अंतिम चार पत्र शालीन, मर्मस्पर्शी और स्नेहपूर्ण हैं। ये पत्र एक महान उद्देश्य

इस गणना के अनुसार आंदोलनों व शहीदों से संबद्ध कुल 64 जीवनी-चित्र और आलेख होते हैं और इस प्रकार दोनों ममेरे-फुफेरे भाई-बहन ने उनके कुल 43 प्रतिशत लेखनों का संकलन किया। इन आलेखों-पत्रों में भारत की स्वतंत्रता के प्रति उनके समर्पण की झलक दिखाई देती है और ये सभी उनकी पारिवारिक विरासत का हिस्सा थे। उनके लेखन की शैली उस समय के लेखन की विशेष शैली जैसी ही थी - तथ्यपरक, उपयोगी, सटीक किंतु आलंकारिक, तीखी, आक्रामक, चुटीली, किसी उच्च-उदात्त उद्देश्य के लिए आह्वान करती

को साधने की ललक में निकले एक ऐसे पारिवारिक व्यक्ति को उसके स्व से बाहर लाते हैं, जो अपने सांसारिक कर्तव्यों को निभाने में असफल रहा। 'द मॉडर्न रिव्यू' के नाम पत्र बी. के. दत्त के साथ लिखा एक संयुक्त पत्र है और संपादक रामानंद चटर्जी के उस आलेख का उत्तर है, जिसमें 'क्रांति जिंदाबाद' के नारे की निंदा की गई थी। अपने पत्र में, वे स्पष्ट करते हैं कि नारे से उनका तात्पर्य क्या है। सुखदेव को लिखे पत्र प्रेम और आत्महत्या के दो विषयों पर आधारित आभासी निबंध हैं जिनमें वह दो मुद्दों पर मौजूदा परिस्थितियों के संदर्भ में अपना मंतव्य रखते हैं। इन दोनों पत्रों की मूल प्रतियाँ अब उपलब्ध नहीं हैं और, जैसा कि आमतौर पर माना जाता है, उनके लेखन की मूल भाषा के प्रति चिंता व्यक्त की जा सकती है। लेखन के काल से पता चलता है कि ये पत्र उनके कारावास के पहले और कारावास के दिनों के हैं। सुखदेव और रामानंद चटर्जी के नाम पत्रों में राजनीति की झलक है।

संकलन में तीन पत्रक या पोस्टर भी शामिल किए गए हैं। इनमें से दो उनकी हस्तलिपि में हैं और सांडर्स की हत्या से संबद्ध हैं। तीसरा पोस्टर दिल्ली विधानसभा में उनके और बी. के. दत्त द्वारा बम फेंकने के बाद वहीं फेंका गया था और उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार इसका उनसे स्पष्ट संबंध है। पहले दो पोस्टर लाला लाजपत राय की निर्मम हत्या के बदले की भावना से प्रेरित जे. पी. सांडर्स की हत्या की घोषणाएँ हैं, जिनमें यह भी स्पष्ट किया गया है कि यह हत्या राजनीतिक है। पहले दो पत्र राष्ट्रवादी स्वरूप के हैं और वस्तुतः तीसरे से भिन्न हैं, जिसमें उच्च वैचारिक रुझान है और यह राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आगरा बम बनाने का केंद्र था जहाँ सभा में फेंके जाने वाले बम तैयार किये गए थे। यहीं सारी कार्रवाई की रूपरेखा भी तैयार की गई, उस पर तर्क-वितर्क हुआ और उसे लागू किया गया। आगरा मिलन ही एकमात्र ऐसा अवसर था, जब उनमें से ज्यादातर लोग एक बड़ी टोली के रूप में साथ रहे। यह काल गहन वैचारिक हलचल का काल था और यहीं विधानसभा से संबद्ध पोस्टर की कल्पना की गई थी। सभा में बम फेंकने का ध्येय 'द ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल' पर

संकलन में तीन पत्रक या पोस्टर भी शामिल किए गए हैं। इनमें से दो उनकी हस्तलिपि में हैं और सांडर्स की हत्या से संबद्ध हैं। तीसरा पोस्टर दिल्ली विधानसभा में उनके और बी. के. दत्त द्वारा बम फेंकने के बाद वहीं फेंका गया था और उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार इसका उनसे स्पष्ट संबंध है। पहले दो पोस्टर लाला लाजपत राय की निर्मम हत्या के बदले की भावना से प्रेरित जे. पी. सांडर्स की हत्या की घोषणाएँ हैं, जिनमें यह भी स्पष्ट किया गया है कि यह हत्या राजनीतिक है

अध्यक्ष के निर्णय को रोक देना और इस पर लोगों का ध्यान आकृष्ट करना था। पोस्टर पर आगरा में इस मुद्दे पर हुई उनकी चर्चाओं की छाप स्पष्ट देखी जा सकती है और इस पोस्टर की कल्पना व लेखन को अलग करना कठिन है।[23]

ऊपर प्रस्तुत तालिकाओं में से एक में, कीर्ति और अन्य प्रकाशनों से लिए गए आलेखों का वर्गीकरण अलग-अलग शीर्षकों के साथ किया गया है और शहीदों की जीवनियों, जिन पर पूर्व में चर्चा की जा चुकी है, के अतिरिक्त, हम 'समकालीन मुद्दे (कंटेंपरेरी इशूज)' शीर्षक के अंतर्गत प्रस्तुत 10 और 'अन्य स्रोतों से' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित 2 आलेखों को छोड़ सकते हैं। 'कीर्ति' में प्रकाशित 'समकालीन मुद्दे' (कंटेंपरेरी इशूज) और वर्णित घटनाएँ या विचार अधिक प्रासंगिक नहीं हैं। अन्य 2 आलेख स्पष्टतः ज्ञात लेखकों के हैं, इसलिए उन पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। इसी प्रकार, लाला लाजपत राय से जुड़े आलेख को छोड़ा जा सकता है। ऐसे में, इसमें भाषा पर 1, 'अंतरराष्ट्रीय आंदोलनों' पर 3, 'रेलिजन एंड कम्यूनलिज्म' शीर्षक के अंतर्गत 2 और 'इशूज ऑफ इंटरेस्ट' शीर्षक के अंतर्गत 11 अलग-अलग आलेख शेष बचते हैं। इन 17 आलेखों का लेखन सन् 1923-1924 में शुरू होता है और अक्टूबर, 1928 में पूरा हो जाता है और इनमें उनके सांडर्स की हत्या से पहले के मुख्य आलेख आते हैं।

इनमें सबसे पहला आलेख 'पंजाब की भाषा और लिपि की समस्या' एक निबंध प्रतियोगिता के लिए लिखा गया था, किंतु यह समस्या उन दिनों का एक ज्वलंत मुद्दा थी। यह उपाख्यानों से भरा एक तर्कपूर्ण आलेख है, जिसमें क्षेत्र के महान व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है। किंतु, इसका आधार मुख्यतः सांस्कृतिक है और भाषा की समस्या को इसमें कोई स्थान नहीं दिया गया है। इस समस्या के समाधान के प्रति उनकी सोच राष्ट्रवादी है और वह समस्त राष्ट्र की एक सामान्य लिपि के रूप में देवनागरी की सिफारिश करते हैं। प्रतियोगिता में यशपाल के साथ वह संयुक्त विजेता रहे। यह किसी युवक के लिए कोई छोटी उपलब्धि नहीं थी। सन् 1924 और 1925 में मतवाला में बलवंत नाम से दो आलेखों 'विश्व प्रेम' और 'युवक' का प्रकाशन हुआ। इन दो आलेखों के एक लंबे अंतराल के बाद कीर्ति में उनका एक आलेख प्रकाशित हुआ और फिर अक्टूबर, 1928 तक के उनकी सारे आलेख 'कीर्ति' में ही प्रकाशित होते रहे। सुविधा के लिए शेष 14 आलेखों की एक सूची नीचे प्रस्तुत है।

1. फिरकू फसाद अते उना दे इलाज (जून, 1927)
2. दो बेगुनाह कीर्तियाँ दा खून (अगस्त, 1927)
3. साको अते वेज्जती दी शहीदी (सिंतबर, 1927)
4. राज-पलटाऊ खुफिया साजिशन (जनवरी, 1928)
5. हर संभव तरीके नाल अंग्रेजी राज टोन बाहर पूरण स्वतंतरता (मई, 1928)
6. मजहब अते साडी आजादी दी जंग (मई, 1928)
7. तशदद दे असली अरथ (मई, 1928) - बंबई के शारदानंद के आलेख का अनुवाद
8. एनार्किज्म कया है? (मई, जून, और जुलाई, 1928) - विद्रोही

9. अछूत दा सवाल (जून, 1928) - विद्रोही
10. पुलिस दियाँ कमिनियन चालान (जून, 1928) - संपादकीय
11. विद्यार्थी अते पॉलिटिक्स (जुलाई, 1928) - संपादकीय
12. नवीन लीडरान दे जुदे जुदे खयाल (जुलाई, 1928)
13. रूस दे जुग पलटू निहिलिस्ट (अगस्त, 1928)
14. साजिशन क्यों हुंदियाँ हन (सितंबर, 1928)

शहीद लेखन और गैर-शहीद लेखन के रूप में उनके लेखन का वर्गीकरण मैंने सोद्देश्य किया है। जहाँ तक प्रश्न इस बात का है कि लेखन भगत सिंह का है या शिव वर्मा का, तो यह प्रायः स्पष्ट है कि यह भगत सिंह का है, और इनका एक उद्देश्य था जिसे पूरा करना था, अपने स्वरूप में वे राष्ट्रवादी थे, और इनमें कोई राजनीतिक रंग प्रायः नहीं था। किंतु, शिव वर्मा का लेखन अधूरा-सा है। कीर्ति में उनके उन आलेखों की अवधि पर विचार करें, जिनमें कुछ संपादकीय लेखों का विश्लेषण किया जा सकता है, जिन पर हस्ताक्षर अमूमन नहीं हैं और इनकी एक बड़ी संख्या है। किंतु वह उर्दू कर्मचारी थे, इसलिए उनसे ज्यादा पंजाबी संपादकों के संपादकीय होने चाहिए थे, पर शामिल संपादकीय लेखों की संख्या में उन्हें स्थान नहीं दिया गया है। किंतु, वह और प्रभावकारी व आक्रामक हो सकते थे तथा स्तंभों में अधिक से अधिक स्थान पाने के लिए देश की बदलती परिस्थितियों के अनुरूप लिख सकते थे। ऐसा नहीं है कि कीर्ति के कुछ चुनिंदा आलेख ही अनाम आलेख हैं। कीर्ति पर अकसर छापे पड़ा करते थे और उसके अंकों पर प्रतिबंध लगा दिया जाता था। यदि प्रकाशन का किसी न किसी रूप में परिणाम भुगतने की संभावना रहती, तो लेखक को सुरक्षित रखने के लिए संपादक आलेख पर उनके हस्ताक्षर नहीं लेते अथवा किसी छद्मनाम से उसका प्रकाशन नहीं करते। यही नहीं, लेखकों की संख्या सीमित होने के कारण, अपने पाठकों को उनकी पाठ्य सामग्री में लेखकों की विविधता दिखाने के लिए भी वे इस प्रकार के तिकड़म किया करते थे। सन् 1926 में वापस भारत आने के बाद संतोख सिंह ने कीर्ति का प्रकाशन शुरू किया, जो पंजाब में कम्युनिस्ट का एक मुखपत्र था। गदर के अनुयायियों से इसका गहरा संबंध था और वे समाचार पत्र लेखकों में शुमार थे और खास तौर पर गदर व बब्बर आंदोलनों तथा राजनीतिक संकट से पीड़ित सभी लोगों पर पद्य और जीवनियाँ लिखा करते थे। इसमें सोवियत रूस से प्राप्त और उस पर कुछ अनुवादित सामग्री तथा व्यापार व मजदूर संघों पर कुछ समाचारों का प्रकाशन किया जाता था। इसमें कुछ राजनीतिक समाचारों को भी स्थान दिया जाता। कुल मिलाकर, पत्रिका की शैली संतुलित और सरल थी, और यह निरंतर एक ही लीक पर चलती रहती थी। इसमें किसी राजनीतिक पत्रिका के ओज और उत्साह का अभाव था। इसलिए इस सूची से बाहरी लोगों के आलेखों से सामग्री छांटना और उसे किसी समान उपनाम से जोड़कर प्रकाशित करना कठिन नहीं था और मैं समझता हूँ कि संकलन के संपादक ने यही किया। किंचित प्रयास से ही यह गुत्थी समझ में आ जाती है और सांडर्स की हत्या से पहले 'यूनिवर्सल लव' से शुरू होने वाले उनके लेखन की प्रतिध्वनि कारावास से लिखे उनके आलेखों में सुनी जा सकती है, जो असेंबली हॉल में फेंके गए पोस्टर से शुरू होते हैं और 2 फरवरी, 1931 को कॉमरेडों को प्रेषित संदेश के साथ समाप्त हो जाते हैं। विशेष न्यायालय या ट्रिब्यूनल के साथ-साथ सत्र न्यायालय और उच्च न्यायालय में होने वाले बहसों, सरकार या अधिकारियों को दी गई याचिकाओं सभी में उन आलेखों का कुछ न कुछ अंश लिया गया था। किसी वाक्यांश, किसी उपयोग, किसी कथन, किसी उद्धरण, किसी संदर्भ, किसी उदाहरण, या कुछ विवरण अथवा किसी त्रुटि को एक कड़ी के रूप में देखा जा सकता है, हालाँकि यह कड़ी कमजोर हो सकती है, किंतु फिर भी इसे उनके परवर्ती आलेखों और एक दृश्य और व्यवहार्य पूरक से जोड़ा जा सकता है। इन आलेखों को अपने संग्रह में शामिल करने को लेकर किसी को संशय हो सकता है, किंतु कोई ठोस संकेत नहीं होने के कारण इसे सिरे से खारिज भी नहीं किया जा सकता। आलेखों के अंग्रेजी अनुवादों को वस्तुतः अंतिम स्वीकृति मिल गई थी क्योंकि अनेकानेक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय विद्वान पहले ही उनकी सराहना कर उन पर टिप्पणी कर चुके थे। किंतु इस पर, खासकर 'कीर्ति' में प्रकाशन पर अंतिम रूप से कुछ नहीं कहा गया है; जिस सामग्री का चयन किया गया है, वह पूर्णतः सच्ची है अथवा सभी सच्चे आलेखों का चयन किया गया है, तथापि मैं कुछ ऐसे आलेखों का उल्लेख कर सकता हूं, जो अन्य आलेखों की तरह उत्कृष्ट हैं किंतु उन्हें दरकिनार कर दिया गया है। अस्तु, स्थिति जो भी हो, कीर्ति के साथ सन् 1927 और 1928 का दो वर्षों का उनका संबंध अत्यंत फलप्रद रहा। 'चाँद' में प्रकाशित उनके आलेख भी इसकी टहनियाँ हैं। हमें जगमोहन के प्रति आभार प्रकट करना चाहिए, क्योंकि वीरेंद्र के बाद उन्होंने ही हमारे लिए कीर्ति से सामग्री निकाल कर उसका संचय किया, अन्यथा शहीद के सांडर्स की हत्या के पहले के आलेखों से हम पूरी तरह से वंचित रह जाते।

यह विमर्श अब तक लेखक के सांडर्स

शहीद लेखन और गैर-शहीद लेखन के रूप में उनके लेखन का वर्गीकरण मैंने सोद्देश्य किया है। जहाँ तक प्रश्न इस बात का है कि लेखन भगत सिंह का है या शिव वर्मा का, तो यह प्रायः स्पष्ट है कि यह भगत सिंह का है, और इनका एक उद्देश्य था जिसे पूरा करना था, अपने स्वरूप में वे राष्ट्रवादी थे, और इनमें कोई राजनीतिक रंग प्रायः नहीं था। किंतु, शिव वर्मा का लेखन अधूरा-सा है। कीर्ति में उनके उन आलेखों की अवधि पर विचार करें, जिनमें कुछ संपादकीय लेखों का विश्लेषण किया जा सकता है, जिन पर हस्ताक्षर अमूमन नहीं हैं और इनकी एक बड़ी संख्या है

की हत्या के पहले के आलेखों तक ही सीमित रहा है क्योंकि उनके बाद के आलेखों की टिप्पणी इस आलेख की सीमा से परे है। वहीं बाद के ज्यादातर दस्तावेजों को लेकर अस्पष्टता कम है और उनके स्रोत की सत्यता सिद्ध की जा सकती है।

उनसे जुड़े दस्तावेजों की संख्या को लेकर प्रश्न खड़ा किया जाता है। यह प्रश्न निरर्थक है क्योंकि इसका कोई उत्तर नहीं है। विगत कुछ वर्षों में ही, ऐसे एक दर्जन से अधिक दस्तावेजों को निर्गत करने में इस लेखक ने सहायता की है जिन्हें आज कई उपलब्ध संकलनों में देखा जा सकता है और इनमें से ज्यादातर को शामिल किया जा सकता है। लाहौर षडयंत्र कांड से जुड़ी एक एक इंच मोटी फाइल है, जिसमें उनके पत्र हैं और हमें अब तक उनमें से गिने-चुने ही प्राप्त हुए हैं। ऐसे कई अभलेखागार हैं, जहाँ इनकी खोज की जा सकती है। यह एक लंबे सफर सा प्रतीत होता है।

अमरजीत चंदन की यह बात मान लेना हास्यास्पद है कि भगत सिंह से जुड़ा सारा कार्य किसी एक व्यक्ति का निजी प्रयास था और इसमें किसी संस्था या संगठन की सहायता नहीं ली गई थी। वस्तुतः, हमारे समक्ष जो संकलन है, वह परिवार और कुछ संबद्ध लोगों की व्यक्तिगत भेंट की परिणति है। उनके आलेखों और संबद्ध दस्तावेजों की वैज्ञानिक आधार पर कोई व्यवस्थित खोज नहीं हुई है। उनके सक्रिय जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा या तो भूमिगत रहा या फिर जेल में बीता। उन्होंने अपने आलेख गुमनाम रूप से लिखे और उन्हें गुप्त रूप से प्रसारित करवाया। हमें उनके उन सभी माध्यमों का ज्ञान नहीं है, जिनसे वह सूचनाएँ भेजते थे। हमें इस बात की भी जानकारी नहीं है कि जिन प्रकाशकों का पता हमें संयोगवश अथवा किन्हीं संबद्ध लोगों से मिला, उन्हें छोड़ कर कौन-कौन से प्रकाशन उन्हें अपने स्तंभों में स्थान देते थे। स्थिति में बदलाव की जरूरत है। ज्ञात सामग्री को सिद्ध और अज्ञात की खोज करने के ठोस प्रयास किए जाने चाहिए और हम उन सभी के ऋणी हैं, जिन्होंने हमारे वर्तमान के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी।

संदर्भ

1. फाइल नं. 261/1931, पोलिटिकल डिपार्टमेंट, स्पेशल सेक्शन, बिहार स्टेट आर्काइव्ज
2. जे.एन. सान्याल, सरदार भगत सिंह, फाइन प्वाइंटिंग कॉटेज, इलाहाबाद, 1931। षड्यंत्र के विचारण में सान्याल सजा से छूट मिल गई थी लेकिन उन्हें अपने नेता की जीवनी लिखने के कारण सजा मिली थी। लाहौर के अखबार 'द पीपल' ने अपने 7 जून 1931 के अंक में इस पुस्तक की एक उत्कृष्ट समीक्षा प्रकाशित की थी, शीर्षक था 'दादा ऑन सरदार'।
3. चंडीगढ़ में वीरेंद्र सिंधु के साथ लेखक का संवाद।
4. वीरेंद्र सिंधु, (सं.), सरदार भगत सिंह, पत्र और दस्तावेज, राजपाल ऐंड संस, दिल्ली, 1975।
5. वीरेंद्र सिंधु (संकलनकर्त्री), भगत सिंह, 'मेरे क्रांतिकारी साथी', राजपाल ऐंड संस, दिल्ली, 1977। इन सभी जीवनियों के अंग्रेजी अनुवाद के लिए कृपया देखें मलविंदर जीत सिंह वराइच, माधवी कटारिया धौमिया, (सं.), अनुवाद, 'राइटिंग्स भगत सिंह ऐंड कॉमरेड्स ऑन मार्टायर्स', यूनिस्टार बुक्स लि., चंडीगढ़, 2016।
6. हरीश जैन, (सं.), 'चाँद फाँसी अंक', यूनिस्टार बुक्स प्रा. लि., चंडीगढ़, 2011
7. कृपया देखें, प्रस्तावना, जयचंद्र विद्यालंकार, फाइल नं. 261/31 (पूर्व उद्धृत)
8. जगमोहन सिंह के साथ लेखक के विविध संवाद
9. कृपया देखें, प्रस्तावना, हरीश जैन (सं.), 'भगत सिंह जेल नोट बुक: इट्स कंटेक्स्ट ऐंड रेलिवेंस', यूनिस्टार बुक्स प्रा.लि., चंडीगढ़, 2016
10. वही
11. वही
12. वही
13. देखें, मथुरा दास करेस्पॉण्डेंस, प्राइवेट पेपर्स, नेशनल आर्काइव्ज, दिल्ली।
14. शिव वर्मा (सं.), सेलेक्टेड राइटिंग्स ऑफ भगत सिंह, नेशनल बुक डिपो, नई दिल्ली, 1986।
15. जगमोहन के साथ लेखक का संवाद। लेकिन लाला रामशरण दास के पोते स्वदेश तलवार, एक पूर्व वायुसेनाकर्मी और वरिष्ठ प्रेस फोटोग्राफर ने बताया कि ये कागजात उनकी सगी चाची श्रीमती कृष्णा कुमारी चड्ढा के पास गोरखपुर में पड़े थे। विभाजन के बाद वे वहीं जाकर बस गई और वे चाहती थीं कि ये कागजात प्रकाशित हो जाएँ। लाला रामशरण दास अपने ड्रीमलैंड ऐंड भगत सिंह की प्रस्तावना की प्रतियाँ नियमित रूप से बनाते रहते थे। इसलिए जितनी प्रतियाँ मिल सकीं, वे सभी असली ही हैं। स्वदेश तलवार द्वारा उपलब्ध कराए गए कागजात का संपादन मलविंदर जीत सिंह वराइच और हरीश जैन ने कुछ अतिरिक्त दस्तावेजों और सूचनाओं के साथ जोड़कर किया था तथा उनका प्रकाशन भी कराया था। गणपति द्वारा उपलब्ध कराई प्रतियाँ एनएमएमएल दिल्ली को उपलब्ध कराई गई थीं।
16. अमरजीत चंदन के साथ लेखक के कई संवाद।
17. मथुरा दास पेपर्स, नेशनल आर्काइव्ज, दिल्ली।
18. वही
19. वही
20. इनमें से कुछ मुद्दों पर लेखक ने अपनी आगामी पुस्तक में बात की है।
21. जगमोहन के साथ लेखक के कई संवाद
22. कृपया देखें -जगमोहन सिंह (सं.), 'शहीद भगत सिंह अते उन्ना दे साथियाँ दियाँ लिखताँ' के संशोधित खंड की संक्षिप्त भूमिका, चेतना प्रकाशन, लुधियाना, 2000। यह रेडिकल पब्लिकेशन, मोगा से पहले 1985 में प्रकाशित हो चुकी कृति का संशोधित संस्करण था।
23. इस विषय पर साक्ष्यों की कोई कमी नहीं है। पुष्टिकर्ताओं ने अपने आगरा निवास के दौर की गतिविधियों के विस्तृत विवरण दिए हैं जो कि उनके जीवित बचे हुए साथियों के प्रकाशित संस्मरणों से बहुत हद तक मेल खाती है। अपने कई साक्षात्कारों में उन्होंने इसे अपने जीवन का स्वर्णिम समय बताया है। पुष्टिकर्ताओं के बयानों के लिए देखें - मलविंदर जीत सिंह वराइच, 'कंप्लीट ट्रिब्यूनल प्रोसीडिंग्स' तथा 'कनफेशंस, स्टेटमेंट्स ऐंड अदर डक्यूमेंट्स' भी, दोनों यूनिस्टार बुक्स प्रा. लि., चंडीगढ़, से क्रमशः 2010 व 2007 में प्रकाशित।

पुस्तक समीक्षा

भगत सिंह - एक पुनर्पाठ : इतिहासलेखन, जीवनी और महान शहीद की विचारधारा

डॉ. राहुल चिमुरकर

भगत सिंह आज भी राष्ट्र के लिए साहस, शौर्य और सर्वोच्च बलिदान के प्रतीक बने हुए हैं। मात्र 31 वर्ष की आयु में ब्रिटिश साम्राज्य पर अधिकतम प्रभाव डालने के लिए उन्होंने अपनी शहादत को गले लगा लिया। भगत सिंह पर कई पुस्तकें लिखी गई हैं, लेकिन इनमें से अधिकांश पुस्तकें एक मार्क्सवादी विचारक के रूप में उनके चित्रण, समाजवाद के प्रति उनके आकर्षण, उनके जेल में रहने आदि के इर्द-गिर्द घूमती हैं। इन पुस्तकों में से किसी ने भी उनकी देशभक्ति को प्रतिबिंबित करने की कोशिश नहीं की, जो उनकी विचारधारा का मूल था। इस पुस्तक को जो बात अलग करती है वह है सावधानीपूर्वक और श्रमसाध्य शोध जो एक मार्क्सवादी विचारक के रूप में महान शहीद भगत सिंह के बारे में संपूर्ण मार्क्सवादी समझ को अनावृत करता है। उन्होंने देश के युवाओं के बीच अपनी विचारधारा को बेचने और उन्हें भगत सिंह के विचारों और चिंतन की गलत समझ की ओर उन्मुख करने के लिए उन्हें एक नायक (आइकन) के रूप में प्रयुक्त किया है। इसलिए, यह (पुस्तक) मार्क्सवादी बुद्धिजीवियों द्वारा भगत सिंह के नाम पर थोपे गए सभी मौजूदा दस्तावेजों की प्रामाणिकता की जाँच करता है, और भगत सिंह के व्यक्तित्व को आकार देने वाले शुरुआती प्रभावों, परंपराओं और घटनाओं की भूमिका की अनदेखी करने के उनके सुविचारित इरादे को प्रदर्शित करता है। मार्क्सवादी इतिहासलेखन द्वारा रचा गया एक और झूठा आख्यान इस तथ्य को इंगित करना है कि भगत सिंह की व्यापक लोकप्रियता के कारण गांधी ने भगत सिंह के जीवन को बचाने के लिए कुछ नहीं किया। यह पुस्तक इस आख्यान को पूरे तथ्यों और प्रमाणों के साथ सुंदर ढंग से विखंडित करती है, और अंतिम क्षण तक गांधी द्वारा भगत सिंह के जीवन को बचाने के प्रयासों की जाँच करती है। यह, इस पुस्तक के लिखे जाने तक, उपलब्ध प्राथमिक और माध्यमिक साहित्य दोनों के विस्तृत अध्ययन के साथ उनकी विरासत को एक सही

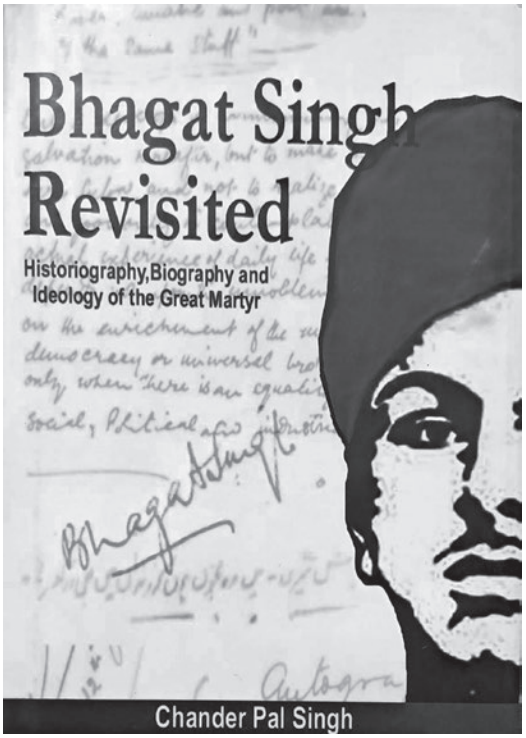

भगत सिंह रीविजिटेड : हिस्ट्रियोग्राफी, बायोग्राफी ऐंड आइडियोलॉजी ऑफ द ग्रेट मार्टायर
लेखक: चंद्र पाल सिंह
ओरिजिनल्स, नई दिल्ली, 2011
मूल्य (सजिल्द): रु. 595
पेपरबैक: रु. 295

संदर्भ में फिर से जाँचने का प्रयास है। यह उस महान शहीद को समझने में समयोचित योगदान है जिसके लिए देश की स्वतंत्रता किसी भी अन्य चीज से अधिक महत्वपूर्ण थी।

पुस्तक को तीन खंडों में बाँटा गया है - इतिहासलेखन, जीवनी और विचारधारा। प्रत्येक इकाई को आगे उप-वर्गों में विभाजित किया गया है। इतिहासलेखन की इकाई उन सभी उपलब्ध स्रोतों के बारे में चर्चा करती है जिनमें उनके स्वयं के लेखन, सरकारी रिकॉर्ड, प्रेस रिपोर्ट, माध्यमिक स्रोत आदि शामिल हैं। भगत सिंह पर प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध होने के बावजूद, उनके जीवन की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं जैसे जन्म तिथि, उनका कानपुर जाना, नौजवान भारत सभा का उदय, की तिथियों पर परस्पर विरोधी राय हैं। इस खंड में, लेखक ने भगत सिंह के जीवन के पूरे कालक्रम को संबंधित घटनाओं की सहायता से तीन चरणों यानी 1907-1923; 1923 - 8 अप्रैल 1929; और 8 अप्रैल 1929 - 23 मार्च 1931, में पुनर्निर्मित किया है । यह बाद में उनके बचपन पर उन प्रभावों की गहराई से पड़ताल करती है जिन्होंने उनके व्यक्तित्व को प्रभावित किया और राष्ट्र के लिए अपना जीवन समर्पित करने के उनके संकल्प को मजबूत किया। उदाहरण के लिए, भारत माता सोसाइटी के बैनर तले अजीत सिंह के नेतृत्व में 1907 की किसान अशांति द्वारा बनाई गई क्रांतिकारी भावना, 13 सितंबर 1915 को सबसे कम आयु के गदर नेता, करतार सिंह सराभा को फाँसी, 1919 में जलियाँवाला बाग हत्याकांड, भाई परमानंद जिन्होंने उन्हें सच्चे क्रांतिकारी द्वारा अनुसरण किए जाने वाले सद्गुणों की शिक्षा दी, और जयचंद्र विद्यालंकार जिनके लेखन ने भगत सिंह के इस विश्वास को प्रोत्साहन दिया कि भारत को दमनकारी ब्रिटिश शासन से मुक्त करने के लिए एक सशस्त्र विद्रोह अपरिहार्य था। लेखक ने अपने आख्यान में भगत सिंह की विरासत को हथियाने के वामपंथी एजेंडे को सुंदर ढंग से उजागर किया और उन वास्तविक प्रभावों को दिखाया जिनसे उन्होंने अपने देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ने के लिए क्रांतिकारी उत्साह प्राप्त किया। बाद में, ब्रिटिश राज के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह की निरर्थकता काकोरी मामले के बाद सिंह द्वारा महसूस किया गया, जिसने पूरे आंदोलन को दिशाहीन और नेतृत्वहीन बना दिया। इसने भगत सिंह को एक यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाने और नवीन तरीकों/कार्यों के साथ आने के लिए प्रेरित किया, जो न केवल जनता को क्रांतिकारी पार्टी के उद्देश्यों के करीब लाएगा बल्कि उन्हें लोकप्रिय मुद्दों पर भी लामबंद करेगा और उनमें ब्रिटिश राज से लड़ने के लिए आत्मविश्वास पैदा करेगा। इस तरह उन्होंने पार्टी के समाजवादी आदर्शों को अधिक कठोरता से पेश करने और एक समतावादी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए पार्टी का नाम हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन (एचआरए) से बदलकर हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (एचएसआरए) कर दिया। साइमन कमीशन के विरुद्ध प्रदर्शन कर रहे प्रदर्शनकारियों पर लाठीचार्ज के बाद लाला लाजपत राय की मौत ने एचएसआरए को जनता के गुस्से को भुनाने की अपनी पहली कार्रवाई का मौका दिया। इसके बाद, उन्होंने जे. ए. स्कॉट को मारने की योजना बनाई, जो लाला लाजपत राय की मृत्यु के लिए उत्तरदायी था, लेकिन गलती से एक अन्य पुलिसकर्मी जे. पी. सॉन्डर्स को मार डाला। भारी पुलिस निगरानी के बावजूद, वे बंगाल जाने में सफल हुए, जहाँ से एचएसआरए ने सेंट्रल असेंबली पर बमबारी करने का फैसला किया। बमबारी के पीछे का उद्देश्य जनता में जागृति पैदा करना था और अंग्रेजों को यह दिखाना भी था कि भारतीय अब उनके दमनकारी शासन को बर्दाश्त नहीं करेंगे और बल की समान शक्ति के साथ उनकी सत्ता को चुनौती दे सकते हैं। भगत सिंह ने हमले के बाद बच निकालने का फैसला नहीं किया, बल्कि मुकदमे के दौरान अपनी विचारधारा और कार्यक्रमों को लोकप्रिय बनाने के अवसर का उपयोग करने की सोची, जो जनता को स्वतंत्रता के लिए बलिदान करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। अंततः, उन्होंने (भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने) '*बंदे मातरम्*' का नारा लगाते हुए स्वयं को गिरफ्तारी के लिए प्रस्तुत कर दिया।

अध्याय 6 'भगत सिंह, द नौजवान भारत सभा और कीर्ति ग्रुप: ए ब्रीफ एनकाउंटर' में लेखक नौजवान भारत सभा, एक राजनीतिक संघ जिससे भगत सिंह अक्टूबर 1928 तक जुड़े थे, और कीर्ति समूह के बीच कम चर्चित संबंधों पर चर्चा करता है। वह स्पष्ट रूप से दोनों समूहों के वैचारिक रुख को सामने लाता है, एक युवाओं को मातृभूमि के प्रति उनके कर्तव्य की याद दिलाता है और दूसरा युवाओं को कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के आदेश के अनुसार पंजाब में कम्युनिस्ट विचारधारा का प्रसार करने के लिए प्रेरित करता है। सभा को 'पूर्ण स्वतंत्रता' प्राप्त करने और युवाओं में देशभक्ति की भावना विकसित करने के लिए बनाया गया था। गदर आंदोलन की एक शाखा के रूप में, स्थानीय गदर नायकों के लिए सहानुभूति का उपयोग करके पंजाब में साम्यवाद फैलाने के लिए अमेरिका,

काबुल, ताशकंद में रहने वाले पूर्व गदरियों द्वारा कीर्ति समूह का गठन किया गया था। कीर्ति पत्रिका के संपादक सोहन सिंह जोश ने एनबीएस को नीचा दिखाने की तमाम कोशिशें कीं लेकिन सफल नहीं हो सके। वैचारिक मतभेदों के बावजूद, एनबीएस और कीर्ति दोनों इस तथ्य के आधार पर जुड़े रहे कि सभा को धन की आवश्यकता थी और कीर्ति को युवाओं को जुटाने के लिए एक मंच की आवश्यकता थी। यह मार्च 1931 में कांग्रेस के कराची अधिवेशन तक चला। यह घटना भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु की फाँसी के बाद हई। कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के निर्देशानुसार कीर्ति समूह ने इस मंच का इस्तेमाल कांग्रेस पर बुर्जुआ संगठन का ठप्पा लगाने के लिए किया और उस पर तीन शहीदों की जान नहीं बचा पाने का आरोप लगाया। इसने कांग्रेस नेतृत्व को बदनाम करने और 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के साथ विलय होने तक नौजवान भारत सभा पर कब्जा करने के लिए सभी उपाय किए। अगले अध्याय में, लेखक ने भगत सिंह के जेल जीवन के बारे में लिखा है, जिसने उन्हें महान व्यक्तित्व बनाने में योगदान दिया। देश की आजादी के लिए उनके साहस, दृढ़ संकल्प और बलिदान के लिए सभी विचारधाराओं के लोगों ने भगत सिंह की सराहना की। मुकदमे के दौरान, दोनों ने हमले के पीछे 'समय पर चेतावनी' देने और हत्या न करने के अपने वास्तविक इरादे से अवगत कराया। वे हमले के बाद आसानी से भाग सकते थे लेकिन ब्रिटिश सरकार को भीतर से चुनौती देने के लिए उन्होंने स्वयं को गिरफ्तार करा लिया। इसका उद्देश्य विधानसभा को दो विवादास्पद विधेयकों - सार्वजनिक सुरक्षा विधेयक और व्यापार विवाद विधेयक - को पारित करने से रोकना भी था, जिससे भारतीय श्रमिकों को दंडित किया जा सकता था। भगत सिंह ने अपने प्रवास के दौरान जो कुछ भी किया वह भारतीय जनता के राजनीतिक अवचेतन को जगाने और ब्रिटिश राज के बुरे इरादों को उजागर करने के लिए था। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा - "बल जब आक्रामक रूप से प्रयोग किया जाता है तो वह 'हिंसा' हो जाता है और इसलिए नैतिक रूप से अनुचित है, लेकिन जब इसका उपयोग किसी वैध कारण के लिए किया जाता है, तो इसका नैतिक औचित्य होता है।" 7 अक्टूबर 1930 को फाँसी की सजा की घोषणा के बाद भी उन्होंने अपने विचारों को सार्वजनिक करने और जनता को जगाने का कोई अवसर नहीं छोड़ा। प्रिवी काउंसिल द्वारा अपील की अस्वीकृति के बाद भी, भगत सिंह ने कोई दया याचिका प्रस्तुत नहीं की, जबकि गांधीजी उनकी फांसी के आखिरी दिन यानी 23 मार्च, 1931 तक उनकी जान बचाने की पूरी कोशिश कर रहे थे।

भगत सिंह को बचाने में गांधी की विफलता ने वामपंथी बुद्धिजीवियों को उनकी छवि खराब करने के लिए एक सुविधाजनक हथियार प्रदान किया। विद्वानों ने इस विवादास्पद मुद्दे पर लिखने के लिए अपनी अनिच्छा दिखाई लेकिन चंद्रपाल सिंह ने अध्याय 10 'गांधी बनाम भगत सिंह: मिथक या तथ्य' में इस मुद्दे की पूरी तरह से जाँच की और भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को बचाने के लिए गांधी द्वारा अंतिम क्षण तक किए गए सभी संभावित प्रयासों पर विचार किया है। लेखक ने इस अध्याय में एचआरए और क्रांतिकारियों पर गांधी की धारणा के साथ-साथ उनके जीवन को बचाने के प्रयासों पर प्रकाश डाला है। ये स्वघोषित बुद्धिजीवी यह समझने में विफल हैं कि भगत सिंह की जान बचाने से गांधी को किसी और की तुलना में अधिक लाभ होता। गांधी-इरविन वार्ता 17 फरवरी 1931 को शुरू हुई और 5 मार्च तक चली। गांधी ने पहली बार 18 फरवरी को ही भगत सिंह का मुद्दा उठाया और देश में अराजकता को रोकने के लिए सजा को निलंबित करने का अनुरोध किया। यह उसी दिन सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को लॉर्ड इरविन की रिपोर्ट में दर्ज है। सजा रूपांतरण (कम्यूटेशन) के बजाय निलंबन की मांग करने के लिए भी लोग उनकी आलोचना करते हैं। गांधी इस तथ्य से अवगत थे कि प्रिवी काउंसिल के निर्णय के बाद कानूनी रूप से रूपान्तरण संभव नहीं था। इसलिए, उनकी योजना निलंबन को कुछ समय के लिए बढ़ाने और तीनों क्रांतिकारियों की रिहाई या क्षमा मांगने के लिए

भगत सिंह को बचाने में गांधी की विफलता ने वामपंथी बुद्धिजीवियों को उनकी छवि खराब करने के लिए एक सुविधाजनक हथियार प्रदान किया। विद्वानों ने इस विवादास्पद मुद्दे पर लिखने के लिए अपनी अनिच्छा दिखाई लेकिन चंद्रपाल सिंह ने अध्याय 10 'गांधी बनाम भगत सिंह: मिथक या तथ्य' में इस मुद्दे की पूरी तरह से जाँच की और भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को बचाने के लिए गांधी द्वारा अंतिम क्षण तक किए गए सभी संभावित प्रयासों पर विचार किया है

सही समय की प्रतीक्षा करने की थी। गांधी ने 21 मार्च को फिर से इरविन से अपने फैसले पर पुनर्विचार करने का अनुरोध करने का प्रयास किया। 23 तारीख की सुबह भी, गांधी ने तीनों क्रांतिकारियों की मौत की सजा को कम करने के लिए वायसराय (उन्हें प्रिय मित्र के रूप में संबोधित करते हुए) को एक व्यक्तिगत पत्र लिखा। उन्होंने ब्रिटिश अधिकारियों पर दबाव डालने के अलावा, अरुणा आसिफ अली को क्रांतिकारियों को हिंसा को अस्वीकार करने हेतु राजी करने के लिए भी नियुक्त किया। इससे गांधी को सजा कम करने के लिए जोर देने के लिए और अधिक शक्ति मिल सकती थी, लेकिन इसे भगत सिंह ने अस्वीकार कर दिया था। वामपंथियों द्वारा गांधी को नीचा दिखाने की पूरी कहानी लेखक द्वारा निराधार साबित कर दी गई है।

अगला अध्याय सबसे प्रासंगिक प्रश्न से संबंधित है - क्या भगत सिंह एक मार्क्सवादी थे? मातृभूमि के लिए अपने प्राणों की आहुति देने वाले व्यक्ति को आज की दुनिया में अपनी बदनाम विचारधारा को बचाने के लिए वामपंथी बुद्धिजीवियों द्वारा अन्यायपूर्वक अपहरण कर लिया जाता है। शहीद-ए-आजम (महान देशभक्त) को एक कट्टर कम्युनिस्ट के रूप में चित्रित करने के लिए उनके चुनिंदा लेखन का उपयोग किया जा रहा है। चाहे विनोद मिश्रा का 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' की प्रस्तावना हो, नजीरुल हसन अंसारी का लेख 'आज के लिए भगत सिंह', इरफान हबीब की रचनाएँ आदि हों, ये सभी भगत सिंह की प्रतिष्ठित स्थिति के माध्यम से अपनी निरर्थक विचारधारा को बेचने की पुरजोर कोशिश कर रहे हैं। उपलब्ध किसी भी साहित्य में भगत सिंह और अन्य क्रांतिकारियों के नेतृत्व में एचएसआरए और कम्युनिस्ट के सिद्धांतों और आदर्शों के अंतर को प्रदर्शित करने का प्रयास नहीं किया गया है, जिसकी चर्चा लेखक ने अध्याय 11 'क्या भगत सिंह मार्क्सवादी थे?' में विस्तार से की है। लेखक का तर्क है कि, मार्क्सवादी इतिहासकार इस तथ्य को भूल जाते हैं कि उनके माता-पिता आर्य समाजी थे और देशभक्ति उनकी मूल विचारधारा थी जिससे भगत सिंह भी प्रेरणा लेते थे। यह निर्विवाद है कि जीवन के अंतिम कुछ वर्षों में वे समाजवाद की ओर आकृष्ट हुए परंतु उन परिस्थितियों को भी समझना होगा जिनमें समाजवाद के प्रति उनकी रुचि पैदा हुई। समाजवाद और मार्क्सवाद के प्रति उनका आकर्षण किसी भी तरह से उन सभी शुरुआती प्रभावों को कम नहीं करता, जिन्होंने उन्हें देश के राष्ट्रीय हित के लिए लड़ने के लिए प्रेरित किया। क्रांतिकारियों पर कार्रवाई ने एचआरए को नेतृत्वहीन बना दिया, जनता और पार्टी के मध्य संबंध की कमी, सोवियत यूनियन में बोल्शेविक क्रांति की सफलता ने भगत सिंह को कुछ ऐसे वैकल्पिक वैचारिक स्थिति की तलाश की ओर उन्मुख किया जिससे पुरानी पार्टी को पुनर्जीवित किया जा सके और स्वतन्त्रता के लिए जनता को जगाया जा सके। एचएसआरए ने साम्यवाद के केवल उन पहलुओं को अपनाया जो प्राचीन भारतीय आदर्शों के साथ संघर्ष में नहीं आए। साम्यवाद वर्ग चेतना जगाने में विश्वास करता था और अपने मुखपत्र वर्कर वीकली में व्यक्तिगत आतंकवाद के कृत्यों को 'बदले का मनोविज्ञान और क्रांति नहीं' मानता था, जैसा कि एचएसआरए द्वारा प्रचारित किया गया था। उनके रुख में बदलाव केवल 1953 में आया जब उन्होंने भगत सिंह की विचारधारा को मार्क्सवाद और लेनिनवाद से जोड़कर उनकी विरासत से अपनी पार्टी के आंतरिक संकट का प्रबंधन करना शुरू कर दिया। भगत सिंह का वैचारिक अपहरण, जैसा कि अंतिम अध्याय में लेखक द्वारा समझाया गया है, जी. एम. तेलंग की पुस्तक 'भगत सिंह: द मैन एंड हिज आइडियाज' के प्रकाशन के साथ शुरू हुआ, जिसका आधार भगत सिंह की विचारधारा को उनकी शहादत और क्रांतिकारी गतिविधियों से अधिक महत्वपूर्ण होने के रूप में प्रस्तुत करना था। एक अन्य प्रमुख वामपंथी इतिहासकार बिपिन चंद्रा ने अपने लेख 'द आइडियोलॉजिकल डेवलपमेंट ऑफ द रिवोल्यूशनरी टेररिस्ट्स इन नॉर्थ इंडिया इन 1920' में समाजवादी विचारधारा और एचएसआरए के कार्यों के बीच विरोधाभासों की एकशृंखला का खुलासा किया। किंतु, 1979 में उसी विद्वान ने भगत सिंह को भारत के महान मार्क्सवादी विचारकों में सम्मिलित किया। उन्होंने देश के लिए शहादत स्वीकार की, लेकिन उनकी विरासत को हथियाने की कोशिश करने वाले लोग देश को तोड़ने में विश्वास करते हैं जो भगत सिंह के विश्वास के बिलकुल विपरीत है। वामपंथियों का यह कुत्सित प्रयत्न उस व्यक्ति के प्रति परम अन्याय है जिसने भारत की स्वतंत्रता के लिए स्वयं को निःस्वार्थ भाव से बलिदान कर दिया। प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों के गहन अभिलेखीय शोध पर आधारित यह पुस्तक भगत सिंह पर मार्क्सवादी इतिहासलेखन के ऊपर एक सामयिक बौद्धिक प्रहार है जिससे कि भगत सिंह के मूल विचारों और सिद्धांतों को ठीक से समझा जा सके।

राष्ट्र वंदना पर 52 कड़ियों में भगत सिंह की क्रांति यात्रा

जनसामान्य के लिए न केवल भगत सिंह, बल्कि कुछ अन्य महापुरुषों के बारे में भी जानकारी प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है यूटयूब चैनल राष्ट्रवंदना। इस पर भगत सिंह से संबंधित 52 कड़ियाँ उपलब्ध हैं

बलिदानियों के शिरोमणि युगदृष्टा भगत सिंह शहादत के 92 वर्ष बीतने के पश्चात भी युवाओं में अत्यंत लोकप्रिय हैं और संभवत: सबसे बड़े यूथ आइकन हैं। उनका देश-प्रेम, महान आदर्श, सर्वोच्च बलिदान और अद्वितीय साहस आज भी कोटि-कोटि युवाओं को प्रेरणा देता है। सोशल मीडिया के युग में भगत सिंह से संबंधित हजारों वीडियो यूट्यूब पर उपलब्ध हैं। किसी भी महान व्यक्ति से संबंधित वीडियो ढूंढिए, अवश्य मिलेंगे लेकिन उनमें कुछ प्रशंसात्मक होंगे और कुछ आलोचनात्मक। बल्कि, कुछ तो अनावश्यक निंदात्मक भी मिलेंगे। लेकिन भगत सिंह के संबंध में ऐसा नहीं है। अधिकांश वीडियोज उनकी प्रशंसा में ही बनाए गए हैं, आलोचनात्मक वीडियो शायद ही मिले। इससे भगत सिंह की लोकप्रियता तो स्थापित होती है परंतु ऐतिहासिक और तथ्यात्मक दृष्टि से प्रामाणिक जानकारी का अभाव भी दृष्टिगोचर होता है। इसका परिणाम यह होता है कि अपुष्ट और दोषपूर्ण जानकारी भी बड़े स्तर पर परोसी जाती है। कोई अज्ञानतावश ऐसा करता है तो कोई किसी निहित उद्देश्य से ऐसा करता है। कुछ तो ऐसे महानुभाव भी हैं जो अन्य महापुरुषों की निंदा करने के ध्येय से ही भगत सिंह के पवित्र नाम का दुरुपयोग कर रहे हैं। कुछ भगत सिंह को साम्यवादी बताकर उनके जरिये अपनी राजनीतिक स्वार्थपूर्ति कर रहे हैं।

इन परिस्थितियों को देखते हुए प्रदीप देसवाल ने माँ भारती की सेवा में समर्पित राष्ट्र वंदना यूट्यूब चौनल के माध्यम से युगदृष्टा भगत सिंह से संबंधित जानकारी उपलब्ध कराने का निश्चय किया। यद्यपि वर्षों में गणना करें तो भगत सिंह का जीवन केवल 23 वर्ष था लेकिन घटनाओं की दृष्टि से यह इतना विराट है कि इसे गिनती के वीडियोज में समेटना अत्यंत दुष्कर कार्य है। यदि पूरे जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं की चर्चा करने बैठें तो यह शृंखला इतनी बड़ी हो जाती है कि फास्ट फूड के जमाने में दर्शकों के धैर्य की परीक्षा लेना भी अनुचित है। इन सब बातों पर विचार करने के पश्चात निर्णय लिया गया कि भगत सिंह की क्रांति-यात्रा को 30 अक्तूबर, 1928 को लाहौर में साइमन कमीशन के विरोध से प्रारंभ करें और 23 मार्च, 1931 को भगत सिंह, राजगुरु व सुखदेव के बलिदान के साथ संपन्न करें। इस तरह कुल 52 वीडियो की शृंखला तैयार हुई जिसमें अधिकांश 10 से 15 मिनट के हैं, हालाँकि विषय की महत्ता के कारण कुछ की लंबाई इससे अधिक भी हो गई है।

ऐतिहासिक तथ्यों से तनिक भी छेड़छाड़ न हो, इस बात का दृढ़ संकल्प था। राष्ट्रीय अभिलेखागार में भगत सिंह व उनके मुकदमों से संबंधित तमाम फाइलों को खंगाला गया, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम लाइब्रेरी व कैंब्रिज यूनिवर्सिटी के सेंटर ऑफ साउथ एशियन स्टडीज में उपलब्ध क्रांतिकारियों के साक्षात्कार पढ़े और अनेक विश्वसनीय पुस्तकों का अध्ययन किया जिनमें से बहुत सारी तो भगत सिंह के सहयोगी क्रांतिकारियों ने ही लिखी थीं। निष्पक्ष भाव से तथ्यों को जाँचा गया और जहाँ-जहाँ किसी प्रकार की अतिशयोक्ति दिखी, उससे किनारा किया। दर्शकों के लाभ के लिए संबंधित दस्तावेजों की सूची चौनल पर डिस्क्रिप्शन में दे दी गई।

शृंखला का प्रत्येक वीडियो महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है। फिर भी यदि कुछ का जिक्र करना हो तो भाग 2 में सांडर्स वध का वर्णन इस तरह हुआ है कि देखने वालों को लगता है मानो वे स्वयं उस घटना के प्रत्यक्षदर्शी थे। भाग 4 में कलकत्ता के कॉर्नवालिस रोड स्थित आर्यसमाज मंदिर में भगत सिंह, जतिन दास व कमलनाथ तिवारी द्वारा बम के लिए गन कॉटन का निर्माण और भाग 5 में आगरा में बम निर्माण और झाँसी के जंगलों में भगत सिंह द्वारा बम परीक्षण की विस्तृत जानकारी दी गई है। भाग 7 में भगत सिंह व सुखदेव के बीच असेंबली में बम फेंकने को लेकर बहस व भाग 8 में भगत सिंह द्वारा प्रिय साथी सुखदेव को लिखे उस पत्र की जानकारी दी गई है जिसे पढ़कर सुखदेव खूब रोए थे। सुखदेव की गिरफ्तारी के समय यह पत्र उनकी

जेब में मिला था।

भाग 9 में बताया गया कि किस प्रकार भूखे पेट रहकर वे मतवाले क्रांति यज्ञ में अपने जीवन की आहुति डाल रहे थे। फरवरी-मार्च 1929 में जब दल के अधिकांश सदस्य आगरा में थे तो जिन दो दुकानों से उधार में आटा, दाल, चावल, दूध, तेल, आदि आता था, उन उधार खातों को पुलिस ने जब्त कर लिया था। उन खातों की मार्च, 1929 की प्रत्येक दिन की प्रविष्टि देखकर ज्ञात होता है कि पूरे दल का एक महीने का खर्च केवल 28 रुपए और 4 आना था जो इस बात का प्रमाण है कि क्रांतिकारियों के दिन बेहद तंगहाली में कट रहे थे। टूटे मटके में दाल उबाली जाती थी जिसमें हल्दी तक भी नहीं होती थी और दाल भी नाममात्र की, अधिकतर पानी ही होता था। जिस भगत सिंह के घर पर बर्तन में दाल से अधिक मात्रा में घी होता था, अच्छे भोजन का शौकीन वह भगत सिंह अब पैसों के अभाव में किस तरह खुशी-खुशी दाल के पानी में सूखी रोटी का टुकड़ा गीला करके खा रहा था, वह दृश्य बाकी साथियों को हैरान करता था। लेकिन बम बनाने के सामान व लाइब्रेरी स्थापित करने के लिए रुपए जुटाने का उसका जूनून कम नहीं हुआ था।

भाग 11 में भगत सिंह व बटुकेश्वर दत्त द्वारा 8 अप्रैल, 1929 को सेंट्रल असेंबली में बम फेंकने की घटना का चित्रण जिस तरह किया गया है वह अद्‌भुत है। उस दिन असेंबली में कौन कहाँ बैठा था, कौन कहाँ खड़ा था, भगत सिंह व बटुकेश्वर दत्त ने क्या कपड़े पहने थे, कितने बजे बम फेंके गए, किस सीट के निकट फटे थे, उस समय असेंबली में क्या हो रहा था और कौन कितना घायल हुआ, इस सबका विवरण बड़े ही रोमांचक ढंग से किया गया है।

भाग 15 में लाहौर में 15 अप्रैल, 1929 को सुखदेव की गिरफ्तारी का विवरण दिया गया है। सुखदेव व साथी क्रांतिकारी किशोरीलाल लाहौर में कश्मीर बिल्डिंग में बम के खोल बनाते थे और ब्रैंडर्थ रोड स्थित जलालदीन नामक व्यक्ति की खराद की दुकान पर गैस मशीन के पुर्जे बताकर बम के खोलों में चूड़ियाँ बनवाते थे। नूरशाह नाम का एक सिपाही जो सीआईडी में तैनात था, वह जलालदीन का दोस्त था। किस प्रकार जलालदीन और नूरशाह को उन पर संदेह हुआ, किस प्रकार संदेह यकीन में बदला और किस प्रकार सुखदेव की गिरफ्तारी हुई, उसका विवरण अत्यंत रोचक बन पड़ा है।

भाग 17 में असेंबली बम केस में भगत सिंह के विरुद्ध गवाही देने वाले सोभा सिंह के बयान का पोस्टमार्टम किया गया। सोभा सिंह अकेले गवाह थे जिनका दावा था कि उन्होंने भगत सिंह को बम फेंकते देखा, लेकिन अदालत में उनके बयान और आसफ अली द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तरों ने उनके दावे की पोल खोल दी थी। 8 अप्रैल, 1929 को असेंबली हॉल की दर्शक दीर्घा खचाखच भरी थी क्योंकि उस दिन सभा अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल विवादास्पद पब्लिक सेफ्टी बिल पर अपनी व्यवस्था देने वाले थे। जैसे ही अध्यक्ष खड़े हुए और बोलना शुरू किया, तभी असेंबली हॉल में बम फटा। उस क्षण सोभा सिंह के अतिरिक्त हर कोई विट्ठलभाई पर निगाह गड़ाए हुए था लेकिन सोभा सिंह कहते हैं कि वे 200 फुट दूर भीड़ में खड़े भगत सिंह को देख पा रहे थे। वे कहते हैं कि उनके कुछ दोस्त भी दर्शक दीर्घा में कुर्सियों पर बैठे थे और सोभा सिंह अध्यक्ष नहीं बल्कि अपने दोस्तों को देख रहे थे क्योंकि उन्हें उनके साथ लंच पर जाना था और भगत सिंह उन दोस्तों के पीछे खड़े लोगों की भीड़ में थे। पहला बम फेंकने के बाद मची भगदड़ के बाद भी उनका दावा था कि उन्होंने बटुकेश्वर दत्त को दूसरा बम फेंकते देखा। बाद में वे कहते हैं कि मैंने उनका चेहरा नहीं बल्कि कपड़े देखे थे। वे कौन दोस्त थे जिनकी बात सोभा सिंह कर रहे थे, थे भी या नहीं क्योंकि मुकदमे में उनके नाम कहीं नहीं बताए गए।

भाग 17 में असेंबली बम केस में भगत सिंह के विरुद्ध गवाही देने वाले सोभा सिंह के बयान का पोस्टमार्टम किया गया। सोभा सिंह अकेले गवाह थे जिनका दावा था कि उन्होंने भगत सिंह को बम फेंकते देखा, लेकिन अदालत में उनके बयान और आसफ अली द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तरों ने उनके दावे की पोल खोल दी थी। 8 अप्रैल, 1929 को असेंबली हॉल की दर्शक दीर्घा खचाखच भरी थी क्योंकि उस दिन सभा अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल विवादास्पद पब्लिक सेफ्टी बिल पर अपनी व्यवस्था देने वाले थे

भाग 19 में वह सच से पर्दा उठाया गया है जब अदालत में यह साबित हो गया था कि बम जान-बूझकर कमजोर बनाए गए थे ताकि किसी की जान न जाए। सरकारी केमिकल जाँचकर्ता की रिपोर्ट और चीफ इंस्पेक्टर ऑफ एक्सप्लोसिव्स डॉ. रॉब्सन के अदालत में दिए बयान से यह प्रमाणित हो गया था कि बमों में कोई ठोस शार्पनेल नहीं थे जो बम को घातक बनाने के लिए उन दिनों प्रयोग किए जाते थे। इसके उलट बमों के अधिकांश टुकड़ों पर कैल्शियम कार्बोनेट लगा मिला था जो बम की मारक क्षमता को कम करता है। भाग 20 में 6 जून, 1929 को भगत सिंह द्वारा अदालत में दिए गए ऐतिहासिक बयान को दिखाया गया

जिसमें भगत सिंह ने अंग्रेजों से कहा था कि तुम व्यक्तियों को कुचल सकते हो, विचारों की हत्या नहीं कर सकते। दो महत्वहीन इकाइयों को कुचल देने से राष्ट्र नहीं कुचला जा सकता। वह ऐतिहासिक बयान क्रांतिकारी आंदोलन का अत्यंत महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

भाग 24 व 25 में लाहौर जेल में हुई ऐतिहासिक भूख हड़ताल के दौरान सही यातनाओं का विवरण बहुत मार्मिक बन गया है। किस प्रकार अपने आदर्श के लिए विप्लवी जतिन दास भूख हड़ताल के 63वें दिन शहीद हुए थे। भाग 26 व 27 मोतीलाल नेहरू, मदन मोहन मालवीय, मोहम्मद अली जिन्ना, एन. सी. केलकर, एम. आर. जयकर आदि नेताओं द्वारा सेंट्रल असेंबली में भगत सिंह और उनके साथी भूख हड़तालियों के समर्थन में दिए गए भाषणों की झलकियाँ पेश की गई हैं।

भाग 28 उस ऐतिहासिक घटना का गवाह है जब नेताजी सुभाष चंद्र बोस अदालत में भगत सिंह से मिलने गए थे। भाग 34 में एक पुरानी दिलचस्प घटना का जिक्र है। हुआ यूँ था कि एक रात भगत सिंह जतिन दास के साथ कलकत्ता में रुके हुए थे। अगली सुबह भोर के समय भगत सिंह ने देखा कि सड़क के दूसरी ओर की बस्ती में एक ग्वाला भैंस का दूध निकाल रहा था। भगत सिंह दूध के बड़े शौकीन थे। वे दौड़कर ग्वाले के पास पहुँच गए और उससे दूध की भरी बाल्टी लेकर सारा दूध पी गए। ग्वाला यह देखकर हैरान हो गया कि कैसे कोई भरी बाल्टी दूध पी सकता है। भगत सिंह ने उसे एक रुपया दिया और आ गए। कुछ महीनों बाद असेंबली में बम फेंकने के बाद भगत सिंह का फोटो अखबार में छपा। यह फोटो देखकर ग्वाला उन्हें पहचान गया कि यह तो वही नौजवान है जो उसके हाथ से लेकर भरी बाल्टी दूध पी गया था। ग्वाला तुरंत जतिन दास के पास गया और कहा कि वह किसी को नहीं बताएगा कि असेंबली में बम फेंकने वाला भगत सिंह आपके पास आता था। ग्वाले ने जतिन दास के हाथ में एक रुपया रखते हुए कहा कि यह रुपया भगत सिंह को लौटा दीजिए। वह तो मेरा सबसे अनमोल ग्राहक है। ऐसे महान देशभक्त की सेवा करके मैं धन्य हो गया हूँ।

भाग 37 में उस घटना का विवरण है जिसमें भगत सिंह को जेल से छुड़ाने के लिए बनाए गए बम का परीक्षण करते हुए क्रांतिवीर भगवतीचरण वोहरा शहीद हुए थे। भाग 43 में उस घटना का विवरण है जब भगत सिंह को फाँसी से बचाने के लिए उनके पिता ने स्पेशल ट्रिब्यूनल के आगे याचिका देकर कहा कि झूठे सरकारी गवाहों को खड़ा करके निर्दोषों को फाँसी देने की तैयारी की जा रही है। उन्होंने उन गवाहों से बहस की अनुमति मांगी थी। उनका यह भी कहना था कि सांडर्स वध के दिन भगत सिंह लाहौर में नहीं बल्कि कलकत्ता में थे। जब भगत सिंह को इस बात की जानकारी मिली तो वे अपने पिता से बहुत नाराज हुए थे और स्थिति को स्पष्ट करते हुए एक पत्र में पिता को लिखा कि मेरा जीवन इतना कीमती नहीं जिसे आदर्श की बलि देकर बचाया जाए। उस घटना का विवरण भी अत्यंत प्रेरक है।

भाग 44 में लाहौर षड्यंत्र केस में आए फैसले की बात है। भाग 48 में परिवार के साथ हुई अंतिम भेंट का विवरण है तो भाग 49 में भगत सिंह को फाँसी से बचाने के लिए किए गए गांधीजी के प्रयासों का विश्लेषण है। भाग 51 में फाँसी के दिन का पूरा हाल और भाग 52 में फाँसी के बाद की घटनाओं की चर्चा है। कुल मिलाकर भगत सिंह के जीवन के अंतिम ढाई साल की सभी महत्वपूर्ण घटनाओं को इस शृंखला में प्रस्तुत किया गया है। शीघ्र ही एक और शृंखला भगत सिंह के पत्रों, लेखों व बयानों पर भी शुरू होने जा रही है।

भगत सिंह के अतिरिक्त राष्ट्र वंदना यूट्यूब चैनल पर अन्य अनेक बलिदानियों पर भी सही-सही जानकारी उपलब्ध कराई जा रही है। इन दिनों नेताजी सुभाष के पराक्रमी जीवन पर वीडियो शृंखला चल रही है। चंद्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला खान, करतार सिंह सराभा, उधम सिंह, राजगुरु, सुखदेव, बटुकेश्वर दत्त, बाघा जतिन, बाजी राउत, चापेकर बंधु, महावीर सिंह, बैकुंठ शुक्ल, सूर्यसेन, जतिन दास, आदि अनेक बलिदानियों पर प्रामाणिक जानकारी देने वाले वीडियो हैं। साथ ही जलियाँवाला बाग नरसंहार और उन दिनों पंजाब में अन्य स्थानों पर हुए अमानवीय अत्याचारों पर बहुत ही महत्वपूर्ण जानकारी दी गई है। किस प्रकार हवाई जहाज से गुजराँवाला में खालसा स्कूल पर बम गिराया गया, गाँवों में निर्दोषों को मशीन गन से भूना गया। लाहौर में कॉलेज की दीवार पर चिपके सरकारी पर्चे के फटने की झूठी खबर पर सारे छात्रों को जेल में डाल दिया गया, महिलाओं, वृद्धों व बच्चों को अमृतसर की गलियों में रेंगने को विवश किया गया। ऐसी तमाम जानकारियाँ राष्ट्र वंदना चैनल पर उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त देश-प्रेम से ओतप्रोत कविताएँ भी हैं। अपनी-अपनी रूचि अनुसार सामग्री सभी के लिए उपलब्ध है। आने वाले दिनों में अन्य जाने-अनजाने बलिदानियों की कहानियाँ भी राष्ट्र वंदना चौनल पर देखने को मिलेंगी। 565 रियासतों के भारत में विलय और मजहब के नाम पर देश के बँटवारे की विभीषिका पर भी शृंखला शीघ्र शुरू होगी। इनके साथ-साथ महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी जैसे राष्ट्र नायकों पर भी वीडियो शृंखला आने वाली हैं।

Link to Rastra Vandana Channel: @RASTRAVANDANA by PRADEEPDESWAL

''पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विषय में जानकारियाँ बहुत ही सीमित हैं। डॉ. महेशचंद्र शर्मा ने इस विषय पर गवेषणात्मक अध्ययन किया है। इस शोध-ग्रंथ का प्रकाशन न केवल जनसंघ की राजनीति व विचारधारा के प्रति लोगों को लाभदायक जानकारियाँ देगा वरन् राजनीति शास्त्र की वैचारिक बहस को भी आगे बढ़ाएगा। दीनदयाल उपाध्याय व भारतीय जनसंघ को समझने के लिए यह शोध-ग्रंथ प्रामाणिक आधारभूमि प्रदान करता है।''

—डॉ. इकबाल नारायण

पूर्व कुलपति-राजस्थान विश्वविद्यालय,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय तथा नॉर्थ-ईस्ट हिल्ज यूनिवर्सिटी,
पूर्व सदस्य-सचिव, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्

''यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जाएँ, तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूँ।''

—डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी

पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा लिखित पुस्तकें

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001 : 2008 प्रकाशक
www.prabhatbooks.com

ISBN 978-93-5186-262-8
₹ 500/-

पं. दीनदयाल उपाध्याय
कर्तृत्व एवं विचार

डॉ. महेशचंद्र शर्मा

पं. दीनदयाल उपाध्याय
कर्तृत्व एवं विचार
डॉ. महेशचंद्र शर्मा

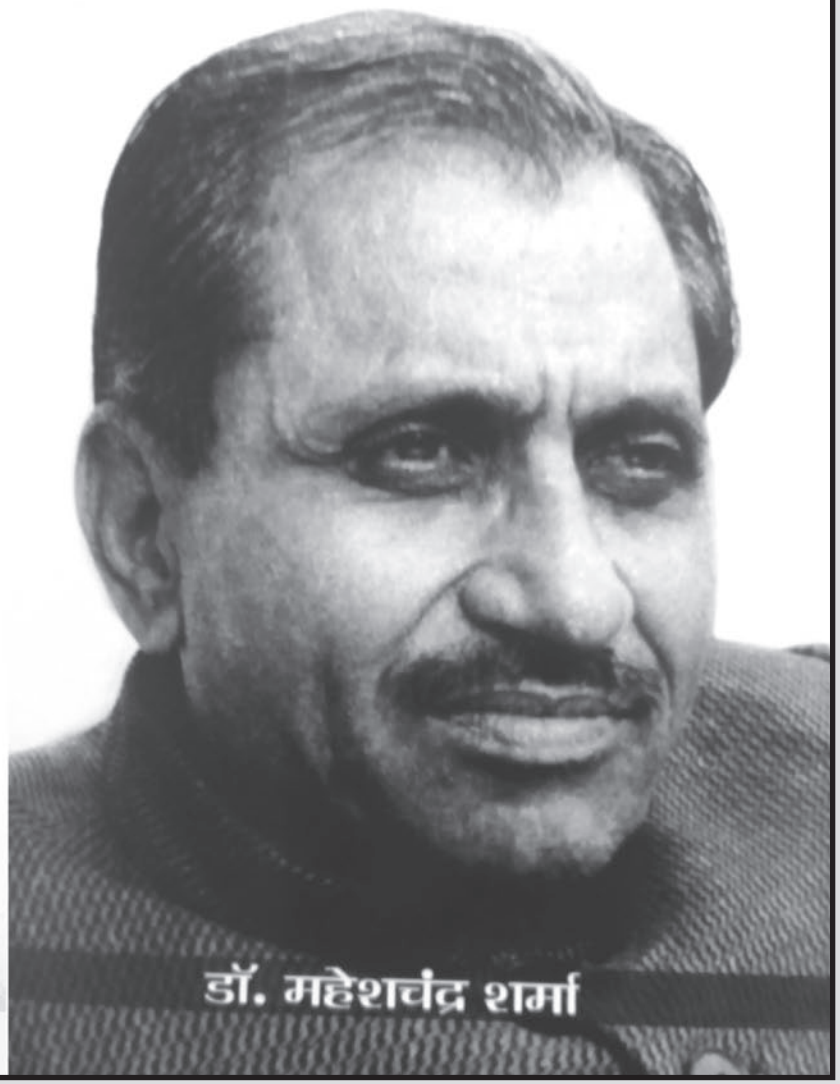

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

'मंथन' की सदस्यता लें

एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान से प्रकाशित शोध त्रैमासिक पत्रिका 'मंथन' की सदस्यता लें। भारत–विचार–दर्शन पर केंद्रित इस पत्रिका की सदस्यता के लिए व्यक्ति/संस्थान कृपया निम्न पते पर सूचित करें और शुल्क एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के नाम से स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, एकाउंट नं. 10080533188, आईएफएससी–एसबीआईएन0006199 में जमा करें।

सदस्यता विवरण

नामः .....

पताः .....

..... राज्यः ..... पिनकोड : .....

लैंड लाइनः ..... मोबाइलः (1)..... (2).....

ई मेलः .....

जन–मार्च 2019 से पुनर्निधारित मूल्य

	भारत में	विदेश में
एक प्रति	₹ 200	US$ 9
वार्षिक	₹ 800	US$ 36
त्रिवार्षिक	₹ 2000	US$ 100
आजीवन	₹ 25,000	

प्रंबध संपादक

'मंथन' त्रैमासिक पत्रिका

एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

दूरभाष : +91-9868550000, 011-23210074

ई–मेल: info@manthandigital.com

IMBIBING TO JOIN THE COOPERATIVE MOVEMENT

Align with vision of sahakarita of atmanirbhar bharat

Associate

National Cooperative Consumer's Federation of India Ltd. (NCCF)

- Pioneering consumer cooperative movement since 1965.
- Aspiring to facilitate voluntary formation and democratic functioning of cooperative.
- Based on self-reliance and mutual aid.
- Benefitting farmers and consumers.

National Cooperative Consumers' Federation (NCCF) of India Ltd.
NCUI Complex, 3, Siri Institutional Area, August Kranti Marg, Hauz Khas, New Delhi – 110016. Ph. No.: +91-11-4168 0056

Regd. R.No. 32486/78 (Hindi)

NCCF

सहकारी आंदोलन में शामिल होने के लिए आत्मसात करना

G20 भारत 2023 INDIA

वसुधैव कुटुम्बकम्
ONE EARTH • ONE FAMILY • ONE FUTURE

आत्मनिर्भर भारत की सहकारिता की दृष्टि के साथ संरेखित करें

संबंद्ध करना

भारतीय राष्ट्रीय उपभोक्ता सहकारी संघ मर्यादित

- 1965 से अग्रणी उपभोक्ता सहकारी आंदोलन
- सहकारिता के स्वैच्छिक गठन और लोकतांत्रिक कामकाज को सुविधाजनक बनाने की आकांक्षा
- आत्मनिर्भरता और आपसी सहायता पर आधारित
- किसानों और उपभोक्ताओं को लाभ

भारतीय राष्ट्रीय उपभोक्ता सहकारी संघ मर्यादित
एनसीयूआई कॉम्प्लेक्स, 3, सिरी इंस्टीट्यूशनल एरिया, अगस्त क्रांति मार्ग, हौज खास, नई दिल्ली–110016
फोन न. +91–11–4168 0056